हिन्दी-पद्य-संग्रह

अर्थात्

हिन्दी के सुप्रसिद्ध ..वीन और नवीन कवियों की
रचनाओं का संग्रह।

हिन्दी-आख्योपन्यास, श्रीमद्भागवत संग्रह, रामायणीय संग्रह, संक्षिप्त-
मनु-स्मृति, उपदेश-रत्न-माला, आश्चर्य-सम्प्रदर्शी, संक्षिप्त-विष्णु
पुराण, हिन्दी-महाभारत आदि अनेक पुस्तकों के

संग्रहकर्त्ता,

चतुर्वेदी-द्वारकाप्रसाद शर्म्मा

द्वारा सम्पादित।

प्रकाशक,

नेशनल प्रेस—प्रयाग।

प्रथम संस्करण] [मूल्य दस आना

समर्पण

यह पुस्तक हिन्दी
के उन कवि-शिरोमणियों
के कर-कमलों में
सादर समर्पित है;
जिन्होंने
हिन्दी साहित्य के भाण्डार को
अपनी
लोक-प्रसिद्ध मनोहर रचनाओं
से
परिपूर्ण किया है।

COMPILER'S NOTE.

THE " *Hindi-Padya-Sangrah* " has been compiled with a view to supply a suitable text-book in *Hindi literature* for the students preparing for the *School Leaving* and *Matriculation* examinations. In this selection, poetical pieces of *twenty-three* well-known *Hindi poets* have been given. To form an idea as to what *Hindi* poetry is, it seems to be absolutely necessary that not only the ancient, but modern poets should also be studied.

During the last twenty or twenty-five years *Hindi* poetry has undergone many changes, not only in regard to the theme; but also in the manner of expression. The compiler has, therefore, not confined his selections to the classical compositions only ; but has also given fair samples of the modern *Hindi* poetry. He has also given short life sketches of those poets who are no more in the land of the living, at the beginning of their poems.

To make the selection interesting and in order that it may serve the purpose of a *Text Book for Schools* ; the compiler has selected pieces on a variety of subjects; such as *Pauranic* events, description of battles, cities, birds, natural sceneries and the like.

In preparing this selection, the compiler has followed the lines generally adopted by the compilers of poetical selections from standard English *Literature*, meant for use in the higher classes of English Schools. It is not for the compiler to say, how far he has succeeded in attaining the object ; but he has spared no pains to make the book as instructive and representative as possible.

ALLAHABAD :
November 1st, 1911. } C. D. P. Sharma.

विज्ञप्ति।

यद्यपि हिन्दी-साहित्य में काव्य-ग्रन्थों का बाहुल्य है, तथापि हिन्दी साहित्य सेवियों का ध्यान ऐसे एक हिन्दी-पद्य-संग्रह की ओर, अब तक आकृष्ट नहीं हुआ था, जो स्कूलों में उच्च-श्रेणी के विद्यार्थियों के पढ़ाने योग्य हो। अङ्गरेज़ी में ऐसे संग्रह एक, दो नहीं; दर्जनों हैं, पर हिन्दी में ऐसे संग्रहों के अभाव ही के कारण, शिक्षा-विभाग के अधिकारियों को अगत्या केवल तुलसी दास जी के रामायण के किसी एक काण्ड को परीक्षा के लिये निर्दिष्ट करना पड़ता है।

इसमें सन्देह नहीं कि तुलसी दास जी की रचना को पढ़ कर, विद्यार्थियों को हिन्दी के पद्य का साधारण बोध हो जाता है; पर जो लाभ उन्हें कई एक कवियों को भिन्न भिन्न ढङ्ग की, नाना विषय सम्बन्धिनी रचनाओं के पढ़ने से होना उचित है, उस लाभ से आजकल के विद्यार्थी निस्सन्देह वञ्चित रहते हैं।

हमने इस संग्रह में हिन्दी के प्राचीन कवि—जैसे सूरदास, तुलसीदास, बिहारी, केशवदास आदि, तथा नवीन कवि

जैसे—बाबू हरिश्चन्द्र, पं० अम्बिकादत्त व्यास, आदि प्रसिद्ध तेईस कवियों की, वे कविताएँ संग्रह की हैं, जो नवयुवक विद्यार्थियों को विना किसी आपत्ति के पढ़ायी जा सकती हैं। जो कवि अब इस धराधाम पर नहीं हैं, उनकी संक्षिप्त जीवनी भी उनकी कविता के आरम्भ ही में दे दी गयी हैं।

हमें आशा है कि शिक्षा-विभाग के अधिकारीगण इस पुस्तक को निर्दोष पाकर, इसके द्वारा विद्यार्थियों को लाभ उठाने का अवसर देंगे।

प्रयाग,
विजया-दशमी, सं०
१९६८

चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्म्मा

विषय--सूची ।

१ महाकवि सूरदास जी ।

२—कविवर मलिक-मोहम्मद-जायसी ।

३—कविवर-नन्ददास जी ।

४—महाकवि गोस्वामी श्रीतुलसीदास जी ।

५—महाकवि केशवदास जी ।

६—महाकवि बिहारीलाल चौबे ।

७—महाकवि भूषण त्रिपाठी ।

८—कविवर गिरिधरदास जी ।

९—महाकवि पद्माकर ।

१०—कविसिरमौर रीवाँ-नरेश श्रीमान् महाराजा रघुराजसिंह जू देव, जी. सी. एस. आई. ।

११—कविवर श्रीमान् राजा लक्ष्मण सिंह ।

१२—महाकवि भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र।

१३—श्रीमान् पण्डित प्रतापनारायण जी मिश्र।

१४—सुकवि साहित्याचार्य पण्डित अम्बिका-दत्त जी व्यास।

१५ पण्डित श्रीधर पाठक।

१६—श्रीयुत पण्डित मधुसूदन गोस्वामी।

हिन्दी-पद्य-संग्रह ।

महाकवि सूरदास जी ।

[जन्म सं०१५४० वि०, मृत्यु सं०१६२० वि० । ये बड़े कृष्ण-भक्त थे । इन्होंने सूरसागर, सूरसारावली, साहित्यलहरी (दृष्टकूट), ब्याहलो और नल-दमयन्ती काव्य रचे हैं । ऐसी जन-श्रुति है कि इन्होंने सवा लाख पद बनाये थे । यह असम्भव नहीं जान पड़ता । इनकी कविता की जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है । इनकी कविता की प्रशंसा में निम्न लिखित दोहे प्रसिद्ध हैं :—

"सूर सूर तुलसी ससी उडुगन केशव दास
अब के कवि खद्योत सम जहँ तहँ करैं प्रकास,
तत्व तत्व सूरा कही, तुलसी कही अनूठी
बची खुची कबिरा कही; और कही सब झूठी ॥
किधों सूर को सर लग्यो, किधौं सूर की पीर
किधों सूर को पद लग्यो, तन मन धुनत शरीर ॥"

अन्तिम दोहा तानसेन ने कहा था ।]

कालिय-दमन ।

बिलावल ।

नारद सों नृप करत बिचार,
ब्रज में ये दोउ कोउ अवतार ॥
नन्द सुवन बलराम कन्हाई ।
इनकी गति मैं कछु न पाई ॥

तृणावर्त सम दूत पठाए।
ता पाछे कागासुर धाए॥
बाकी पठाइ दई पहले ही।
ऐसन को बल वैसे हि लेही॥
उनतें कछू भयो नहिं काजा।
यह सुनि सुनि मोहिं आवति लाजा॥
अब मुनि तुम इक बुद्धि बिचारहु।
सूरश्याम बलरामहि मारहु॥

नारद मुनि नृप सों यह भाखत,
वे हैं काल तुम्हारे प्रगटे काहे तें तुम उनको राखत॥
काली उरग रह्यो यमुना में तहँ ते कमल मँगावहु।
दूत पठाइ देहु बृज ऊपर नन्दहिं अति डरपावहु॥
यह सुनि के बृज लोग डरेंगे वोउ सुनि हैं यह बात।
पुहुप लेन जैहैं नँद ढोटा उरग करै तहँ घात॥
यह सुनि कंस बहुत सुख पायो भली कही इहि मोहि।
सूरदास प्रभु को मुनि जानत ध्यान करत मन एहि॥

कँस बुलाइ दूत इक लीनो,
कालीदह के फूल मँगाए पत्र लिखाइ ताहि कर दीनो॥
यह कहियो बृज जाइ नन्द सों कँस राज अति काज मँगाए।
तुरत पठाइ दिए ही बनि है भली भाँति कहि कहि समुझाए॥
यह अन्तर्यामी जानी जिय आपु रहे बन ग्वाल पठाए।
सूरश्याम बृज जन सुखदायक कँस काल जिय हरष बढ़ाए॥

पाती बाँचत नन्द डराने,
कालीदह के फूल मँगाए सुनी सबनि बृज लोग घराने॥
जो मोको नहि फूल पठावहु तो बृज करौं उजारी।
महर गोप उपनन्द न राखैं सबहिन डारौं मारी॥

पुहुप देहु तौ बनै तुम्हारी ना तरु गये बिलाइ ।
सूरश्याम बल मोहन तेरे माँगहु उनहि धराइ ॥

नन्द सुनत मुरझाइ गए,
पाती बाँचो सुनो दूत मुख यह बाणी सुनि चकित भए ॥
बल मोहन खटकत वाके मन, आजु कही यह बात ।
काली-दह के फूल कहीं धौं को आने पछतात ॥
और गोप सब नन्द बुलाये कहत सुनौ यह बात ।
सुनहुँ सूर नृप ढङ्ग यह आयो बलमोहन पर घात ॥

खेलन चले कुँअर कन्हाइ,
कहत घोष निकास जैये तहाँ खेलैं धाइ ॥
गेंद खेलत बहुत बनि है आनो कोई जाइ ।
घरहि गए सखा श्रीदामा गेंद तुरतहि ल्याइ ॥
अपने कर लै श्याम देख्यो अतिहि हरषि बढ़ाइ ।
सूर के प्रभु सखा लीने करत खेल बनाइ ॥

श्याम सखा को गेंद चलाइ,
श्रीदामा मुरि अङ्ग बचायो, गेंद पर्यो काली दह जाई ॥
धाइ गह्यो तब फेंट श्याम की देहु न मेरो गेंद मँगाई ।
और सखा जिनि मोको जानो मोसों जिन तुम करो ढिठाई ॥
जानि बूझि तुम गेंद गिरायो अब दीन्हें ही बनै कन्हाई ।
सूर सखा सब हँसत परस्पर भली करी हरि गेंद गिराइ ॥

रिस कर लीन्ही फेंट छुड़ाई,
सखा सबै देखत हैं ठाढे आपुन चढ़े कदम पर धाई ॥
तारी दै दै हँसत सबै मिलि श्याम गए तुम भाजि डराई ।
रोवत चले श्रीदामा घर को जसुमति आगे कहिहौं जाई ॥

सखा सखा कहि श्याम पुकार्‌यो गेंद आपनो लेहु न आई ।
सूरश्याम पीताम्बर काँछे कूद परे दह में भहराई ॥

अति कोमल तन धर्‌यो कन्हाई,
गए तहाँ जहँ काली सोवत उरग नारि देखत अकुलाई ॥
कह्यौ कौन को बालक है तू बार बार कहि भाग न जाइ ।
छिनकहि में जरि भस्म होयगो जब देखै उठि जागि जभाइ ॥
उरग नारि की बाणी सुनि कै आप हँसे मन में मुसकाइ ।
मोको कँस पठायो देखन तू या को अब देहि जगाइ ॥
कहा कँस दिखरावत इनको एक फूँक ही में जरि जाइ ।
पुनि पुनि कहत सूर के प्रभु कों तू अब काहे न जात पराइ ॥

मारू ।

झिरकि कै नारि दै गारि गिरिधारि तब
पूछ पर लात दै अहि जगायो ।
उठ्यो अकुलाय डरपाय खगराय को
देखि बालक अति गर्ब बढ़ायो ।
पूछ राखी चापि रिसनि काली कापि
देखै सब साँप औसान भूले ।
पूँछ लीनो झटकि धरनि सों गहि पटकि
फूँ कह्यौ लटकि कर क्रोध फूले ।
करत फनघात बिष जात अतुरात अति
नीर जरि जात नहिं गात परसै ।
सूर के प्रभु श्याम लोकाभिराम बिन
जानि अहिराज बिषज्वाल परसै ।

बिलावल ।

उरग लियो हरि को लपटाय,
गर्व बचन कहि कहि मुख भाषत मोको नहिं जानत अहिराइ ॥
लियो लपेटि चरण तें शिख लों अति यह मोसों करी ढिठाइ।
चाँपी पूछ लुकावत अपनी युवतिन को नहि सकत दिखाइ ॥
प्रभु अन्तर्यामी सब जानत अब डारों यह संकुच मिटाइ।
सूरदास प्रभु तन विस्तार्‍यो, काली बिकल भयो तब जाइ ॥

कान्हरो ।

जबहिं श्याम अति तनु विस्तार्‍यो,
पटपटात टूटत अँग जान्यों 'शरण' 'शरण' अहिराज पुकार्‍यौ ॥
यह बाणी सुनतहि करुणामय तुरत गए सकुचाई ।
इहै बचन सुन द्रुपदसुता मुख, दीन्हो बसन बढ़ाई ॥
इहै बचन गजराज सुनायो गरुड़ छाँड़ि तहँ धाए।
इहै बचन सुन लाखा-गृह में पाण्डव जरत बचाए ॥
इह बाणी सहि जात न प्रभु सों ऐसे परम कृपाल ।
सूरदास प्रभु अँग सकोर्‍यौ व्याकुल देख्यो व्याल ॥

गौरी ।

नाथत व्याल बिलम्ब न कीन्हो,
पग सों चापि घींच बल तोर्‍यो फोरि नाक कर सों गहि लीन्हो॥
कूदि चढ़े ताके माथे पर काली करत बिचार।
श्रवणन सुनी रही यह बाणी बृज ह्वै है अवतार ॥
तेइ अवतरे आइ गोकुल में मैं जानी यह बात ।
स्तुति करन लग्यौ सहसौ फन धन्य धन्य जगतात ॥
बार बार कहि सरण पुकार्‍यो राखि राखि गोपाल ।
सूरदास प्रभु कहत सकुचिं गए सरण कहत तब व्याल ॥

बिलावल ।

देखि दरस मन हरष भयो,
पूरण ब्रह्म सनातन तुमहीं बृज कृष्ण अवतार लयो ॥
श्री मुख कह्यौ अजौ लौं तुम नहिं जान्यौ ब्रह्म अवतार ।
और कौन जो तुम सों बाचे सहस फनन की झार ॥
अनजानत अपराध किये बहु राखि शरण मोहिं लेहु ।
सूरदास प्रभु धनि मेरे फन चरण कमल जहँ देहु ॥

नट ।

आवत उरग नाथे श्याम,
नन्द यशोदा गोपी गोपनि कहत हैं बलराम ॥
मोर मुकुट बिसाल लोचन श्रवण कुण्डल लोल ।
कटि पीताम्बर भेष नटवर नृत्य फन प्रति डोल ॥
देव दिवि दुन्दुभि बजावत सुमन ये बरषाइ ।
सूरश्याम बिलोकि बृज जन मातु पितु सुख पाइ ॥

सोरठ ।

ठाढ़े देखत हैं बृजबासी,
कर जोरे अहि नारि विनय करैं कहत धन्य अविनासी ॥
जे पद कमल रमा उर राखत परसि सुरसरी आई ।
जे पद कमल शम्भु को सम्पति फल प्रति धरे कन्हाई ॥
जे पद परसि शिला उद्धारो पाण्डव गृह फिरि आए ।
जे पद कमल भजन महिमा ते जन प्रहलाद बचाए ॥
जे पद बृज युवतिन सुखदायक तिहूँ भुवन धरे बावन ।
सूरश्याम ते पद फन फन प्रति निर्तत अहि कियो पावन ॥

गौरी ।

तुरत कमल अब देहु पठाइ,
सुनहु तात अब बिलम्ब न कीजै कँस चढ़ै बृज ऊपर आइ ॥
कमल मँगाइ लिये तट ऊपर कोटि कमल तब दिये पठाइ ।
बहुत बिनय करि पाती पठई नृप लीजै सब पुहुप गिनाइ ॥
तैसी मोकों आज्ञा दीजै बहुत धरे जल माँझ सजाइ ।
सूरदास नृप तुव प्रताप तें काली आप गयो पहुँचाय ॥

फुटकर-पद ।

प्रार्थना-बिलावल ।

चरण कमल बन्दौं हरि राई,
जाकी कृपा पङ्गु गिरि लंघै, अँधरे को सब कछु दरसाई ॥
बहिरो सुनै मूक पुनि बोलै रङ्क चलै सिर छत्र धराई ।
सूरदास स्वामी करुणामय बार बार बन्दौं तिहि पाँई ॥

कान्हरा ।

अबिगत गति कछु कहत न आवै,
ज्यों गूँगे मीठे फल को रस अन्तर्गत ही भावै ॥
परम स्वाद सब ही जु निरन्तर अमित तोष उपजावै ।
मन बाणी को अगम अगोचर सो जाने जो पावै ॥
रूप रेख गुण जाति जुगति बिनु निरालम्ब मन चकृत धावै ।
सब बिधि अगम बिचारहिं तातें सूर सगुण लीला पद गावै ॥

[भीष्म-प्रतिज्ञा]

मलार।

आज जो हरिहि न शस्त्र गहाऊँ,
तौ लौं हौं गङ्गा जननी को शान्तनु सुत न कहाऊँ॥
स्यन्दन खण्ड महारथ खण्डौं कपिध्वज सहित डुलाऊँ।
इती न करौं शपथ मोहिं हरि की छत्रिय गतिहि न पाऊँ॥
पाण्डव दल सन्मुख ह्वै धाऊँ सरिता रुधिर बहाऊँ।
सूरदास रण-भूमि बिजय बिन जियत न पीठ दिखाऊँ॥

[अर्जुन प्रति श्रीकृष्ण प्रतिज्ञा]

बिलावल।

हम भक्तन के भक्त हमारे,
सुन अर्जुन परितिज्ञा मेरी यह वृत टरत न टारे॥
भक्तन काज लाज हिय धरि कै पाँव पियादे धाऊँ।
जहँ जहँ भीर परै भक्तन को तहँ तहँ जाय छुड़ाऊँ॥
जो मम भक्त सों बैर करत है सो निज बैरी मेरो।
देख बिचार भक्त हित कारण हाँकत हौं रथ तेरो॥
हारों हार भक्ति अपने की जीतें जीत बिचारों।
सूरदास जो भक्त बिरोधी चक्र सुदर्शन मारों॥

सारङ्ग।

तजो मन हरि बिमुखन को सङ्ग,
जाके सङ्ग कुबुधि उपजत है परत भजन में भङ्ग॥
कहा होत पय पान कराये विष नहिं तजत भुजङ्ग।
कागहि कहा कपूर चुगाये स्वान नहाये गङ्ग॥
खर को कहा अरगजा लेपन मरकट भूषण अङ्ग।

गज को कहा न्हवाये सरिता बहुरि धरै खहि छङ्ग ॥
पाहन पतित बाँस नहिं बेधत रीतो करत निषङ्ग ।
सूरदास खल कारी कामरि चढ़त न दूजो रङ्ग ॥

सन्त—महिमा ।

जा दिन सन्त पाहुने आवत,
तीरथ कोटि अन्हान करैं फल जैसो दरसन पावत ॥
नेह नयो दिन दिन प्रति उनको चरन कमल चित लावत ।
मन बच क्रम औरन नहिं जानत सुमिरत औ सुमिरावत ॥
मिथ्यावादि उपाधि रहित ह्वै बिमलि बिमलि जस गावत ।
बन्धन करम कठिन जो पहिले सोऊ काटि बहावत ॥

मलिक-मुहम्मद-जायसी ।

[जन्म सं० १५७५ वि. के लगभग । ये मुसलमान थे । इन्होंने पद्मावति और अखरावट नामक दो ग्रन्थ बनाये हैं ।]

पद्मावति ।

अथ सिंघल-दीप-बर्णन ।

चौपाई ।

सिंघल दीप कथा अब गावउँ ।
अउ सो पदुमिनि बरनि सुनावउँ ॥
बरनक दरपन भाँति बिसेखा ।
जो जेहिं रूप से तइसइ देखा ॥
धनि सो दीप जहँ दीपक नारी ।
अउ सो पदुमिनि दइ अवतारी ।
सात दीप बरनइ सब लोगू ।
एकउ दीप न ओहि सरिजोगू ।
दिया दीप नहिं तस उजियारा ।
सरन दीप सर होइ न पारा ।
जम्बू दीप कहउँ तस नाहीं ।
लंक दीप पूजन परछाहीं ।
दीप-कुँभसथल आरन परा ।
दीप मउसथल मानुस-हरा ।

दोहा ।

सब संसार पिरिथुमीं आए सातउ दीप ।
एक-उ दीप न उत्तिमु सिंघल-दीप समीप ॥

चौपाई ।

गँधरब-सेन सुगन्ध नरेसू ।
सो राजा वह ताकर देसू ॥
लङ्का सुना जो रावन राजू ।
तेहु चाहि बड़ता कर साजू ॥
छप्पन कोड़ कटक दरसाजा ।
सबइ छतर-पति अउगढ राजा ॥
सोरह सहस घोर घोर-सारा ।
साँव करन अउ बाँक तुखारा ॥
सात सहस हस्ती सिंघली ।
जनु कविलास इरावत बली ॥
असु-पतीक सिर-मउर कहावइ ।
गज-पतीक आँकुस गज नावइ ॥
नर-पतीक अउ कहउँ नरिन्दू ।
भू-पतीक जग दूसर इन्दू ॥

दोहा ।

अइस चक्कवइ राजा, अहूँ खराड भय होइ ।
सबइ आइ सिर नावहीं, सरिवर करइ न कोइ ॥

चौपाई ।

जब हि दीप नियरावा जाई ।
जनु कविलास नियर भा आई ॥
घन अँवराउँ लाग चहुँ पासा ।
उठे पुहुमि हुति लाग अकासा ॥
तरिवर सबइ मलय गिरि लाई ।
भइ जग छाँह रइन होइ छाई ॥
मलय समीर सुहाई छाँहा ।
जेठ जाड़ लागइ तेहि माँहा ॥

ओहीं छाँह रइनि होइ आवइ।
हरिअर सवइ अकास दिखावइ॥
पंथिक जउँ पहुँचई सह घामू।
दुख बिसरइ सुख होइ बिसरामू॥
जेइ वह पाई छाँह अनूपा।
बहुरि न आइ सहहिं यह धूपा॥

दोहा।

अस अँबराउँ सघन घन, बरनि न पारउँ अन्त।
फूलइ फरइ छवउ रितु, जानउँ सदा बसन्त॥

चौपाई।

फरे आँव अति सघन सोहाए।
अउजस फरे अधिक सिर नाए॥
कटहर डार पींड़ सँउपाके।
बड़हर सो अनूप अति ताके॥
खिरनी पाक खाँड असि मीठी।
जाँउनि पाकि भँवर अस डीठी॥
नरियर फरे फरी फरुहुरी।
फरी जानु इँदरासन पुरी॥
पुनि महुआ चुअ अधिक मिठासू।
मधु जस मीठ पुहुप जस बासू॥
अउर खजहजा आउ न नाऊँ।
देखा सब राउन अँबराऊँ॥
लाग सबइ जस अंब्रित साखा।
रहइ लोभाइ सोइ जो चाखा॥

दोहा।

गुआ सुपारि जायफर, सब फर फरे अपूरि।
आस पास घनि इंबिली, अउ घन तार खजूरि॥

चौपाई।

बसहिं पंखि बोलहिं बहु भाखा।
करहिं हुलास देखि कइ साखा॥
भोर होत बासहिं चुहिचूही।
बोलहिं पाँडुखि एकइ तूही॥
सारउ सुआ जो रहचर करहीं।
कुरहिं परेवा अऊ करबरहीं॥
पिउ पिउ लागहि करइ पपीहा।
तुहीं तुहीं करि गुडुरु खीहा॥
कुहू कुहू कहि कोइल राखा।
अउ भृङ्गराज बोल बहुभाखा॥
दही दही कर महरि पुकारा।
हारिल बिनवइ आवनिहारा॥
कुहुकहिं मोर सोहावन लागा।
होइ कोराहर बोलहिं कागा॥

कविवर-नन्ददास ।

[जन्म सम्बत् १५८५ वि० । यह वृज के आठ महाकवियों में से हैं । इनके बनाये ग्रन्थ ये हैं:- नाममाला, अनेकार्थ, रासपञ्चाध्यायी, रुक्मिणी मङ्गल, दशमस्कन्ध, दानलीला, मानलीला और मानसमञ्जरी कोष । इनके सिवाय हज़ारों पद भी इनके बनाये मिलते हैं ।]

रासपञ्चाध्यायी ।

बन्दन करौं कृपानिधान श्री शुक शुभकारी ।
शुद्धज्योतिमय रूप सदा सुन्दर अबिकारी ॥
हरि-लीला रसमत्त मुदित नित विचरत जग में ।
अद्भुत गति कतहूँ न अटक ह्वै निकसत मग में ॥
नीलोत्पल दल स्याम अंग नव जोवन भ्राजै ।
कुटिल अलक मुख कमल मनो अलि अवलि बिराजै ॥
ललित बिशाल सुभाल दिपति जनु निकर निसाकर ।
कृष्ण भगति प्रतिबन्ध तिमिर कहँ कोटि दिवाकर ॥
कृपा रङ्ग रस ऐन नैन राजत रतनारे ।
कृष्ण रसासव पान अलस कछु घूम घुमारे ॥
उन्नत नासा अधर बिम्ब शुक की छबि छीनी ।
तिन महँ अद्भुत भांति जु कछुक लसति मसि भीनी ॥
श्रवण कृष्ण रस भवन गण्ड मण्डल भल दरसै ।
प्रेमानन्द मिलिन्द मन्द मुसकनि मधु बरसै ॥
कम्बु कण्ठ की रेष देषि हरि धरमु प्रकासै ।
काम क्रोध मद मोह लोभ जिहि निरषत नासै ॥
उरवर पर अति छबि की भीर कछु बरनि न जाई ।
जिहि भीतर जगमगत निरन्तर कुँवर कन्हाई ॥

सुन्दर उदर उदार रोमावलि राजति भारी।
हियो सरोवर रस भरि चली मनो उमगि पनारी॥
जिहि रस की कुण्डिका नाभि अस शोभित गहरी।
त्रिबली तामहँ ललित भाँति मनु उपजत लहरी॥
गूढ़ जानु आजानुबाहु मद गज गति लोलैं।
गङ्गादिकन पवित्र करत अवनी पर डोलैं॥
जब दिनमनि श्रीकृष्ण दृगन ते दूर भये दुरि।
पसरि पर्‌यौ अँधियार सकल संसार घुमड़ि घुरि॥
तिमिरि ग्रसित सब लोक ओक लखि दुखित दयाकर।
प्रगट कियो अद्भुत प्रभाव भागवत विभाकर॥
ताहू मैं पुनि अति रहस्य यह पञ्चाध्यायी।
तन महँ जैसे पञ्चप्राण अस शुक मुनि गायी॥
परम रसिक इक मीत मोंहि तिहिं आज्ञा दीनी।
तातैं मैं यह कथा यथामति भाषा कीनी॥
अब सुन्दर श्रीवृन्दाबन गुण गाइ सुनाऊँ।
सकल सिद्धि दायक नायक पै सब सिधि पाऊँ॥
श्रीवृन्दाबन चिद्‌घन कछु छबि बरनि न जाई।
कृष्ण ललित लीला के काज गहि रह्यौ जड़ताई॥
पुनि तहँ खग मृग कुञ्जलता वीरुध त्रिन जेते।
नहि न काल गुण प्रभा सदा शोभित रहे तेते॥
सकल जन्तु अबिरुद्ध जहाँ हरि मृग सँग चरहीं।
काम क्रोध मद लोभ रहित लीला अनुसरहीं॥
सब दिन रहत बसन्त कृष्ण अवलोकनि लोभा।
त्रिभुवन कानन जा विभूति करि शोभित शोभा॥
ज्यों लक्ष्मी निज रूप अनूपम पद सेवत नित।
भू बिलसत जु बिभूति जगत जगमग रही जित कित॥

श्री अनन्त महिमा अनन्त को बरनि सकै कवि ।
शङ्करषण सों कछुक कहो श्री मुख जाकी छवि ॥

देवन में श्री रमारमण नारायण प्रभु जस ।
बन में वृन्दावन सुदेश सब दिन शोभित अस ॥

या बन की बरबानक या बनहीं बनिआवै ।
शेष महेश सुरेश गणेश न पारहि पावै ॥

जहँ जेतक द्रुम जात कलपतरु सम सब लायक ।
चिन्तामणि सम सकल भूमि चिन्तित फलदायक ॥

तिन महँ इकजु कलपतरु लगि रही जगमग जोती ।
पात मूल फल फूल सकल हीरा मनि मोती ॥

तहँ मुतिअन के गन्ध लुब्ध अस गान करत अलि ।
बर किन्नर गन्धर्व अप्छर तिन परे कोनै बलि ॥

अमृतफुही सुखगुही अति सुही परत रहत नित ।
रास रसिक सुन्दर पिय को श्रम दूर करन हित ॥

वा सुर तरु महँ और एक अद्भुत छबि छाजै ।
शाखा दल फल फूलनि हरि प्रतिबिम्ब बिराजै ॥

ता तरु कोमल कनक भूमि मन में मोहत मनु ।
दिखियत सब प्रतिबिम्ब मनों धर मह दूसर बनु ॥

जमुना जू अति प्रेम भरी नित बहै सुगहरी ।
मनि मण्डित मनि माह दौरि जनु परसत लहरी ॥

तहँ इकु मनिमय अङ्क चित्र को शङ्क सुभग अति ।
ता पर षोड़श दल सरोज अद्भुत चक्राकृति ॥

मधि कमनीय करिनिका सब सुख सुन्दर कन्दर ।
तहँ राजत बृजराज कुँअर बर रसिक पुरन्दर ॥

निकर बिभाकर दुति मेटत शुभ मणि कौस्तुभ अस।
सुन्दर नन्द कुँअर उर पर सोइ लागत उड़ जस॥
मोहन अद्भुत रूप कहि न आवत छबि ताकी।
अखिल खण्ड व्यापी जु ब्रह्म आभा है जाकी॥
परमातम धरमी करि सब के अन्तरजामी।
नारायण भगवान धरम करि सब के स्वामी॥
बालकुमार पौगण्ड धरम आक्रान्तललित तन।
धरमी नित्य किशोर कान्ह मोहत सब को मन॥
अस अद्भुत गोपाल लाल सब काल बसत जहँ।
याही तें बैकुण्ठ विभव कुण्ठित लागत तहँ॥
या बन की बर बानक या बन ही बनि आवै।
शेष सुरेश महेश गणेश न पारहि पावै॥

महाकवि ।

गोस्वामी श्री तुलसीदास जी ।

[जन्म सं.१६०१ वि० मृत्यु सं. १६८० वि० । ये श्री वैष्णव थे । इनके बनाये ग्रन्थ ये हैं :—रामचरितमानस या रामायण, कवितावली, दोहावली, विनय-पत्रिका, बरवै रामायण, हनुमान बाहुक आदि । हिन्दुओं में रामायण के बराबर और किसी हिन्दी ग्रन्थ का आदर एवं प्रसार नहीं है। रङ्क से लेकर राजा तक रामायण को चाव से पढ़ते और सुनते हैं । उसकी भाषा भी वैसी ही सरल, गम्भीर और मधुर है । ये बहुत दिन तक काशी में रहे और वहीं इनका परलोक-वास हुआ ।]

राम-बन-गमन ।

सवैया ।

[१]

कीर के कागर ज्यों नृप चीर,
बिभूषन उप्पमा अंगनि लाई ।
औध तजी मग बास के रूख ज्यों,
पन्थ के साथ ज्यों लोग लुगाई ॥
सङ्ग सुबन्धु पुनीति प्रिया,
मनों धर्मक्रिया धरि देह सुहाई ।
राजिवलोचन राम चले,
तजि बाप को राज बटाऊ कि नाँई ॥

[२]

कागर कीर ज्यों भूषण चीर ,
शरीर लस्यो तजि नीर ज्यों काई ।
मातु पिता प्रिय लोग सबै ,
सनमानि सुभाइ सनेह सगाई ॥
सङ्ग सुभामिनि भाइ भलौ ,
दिन द्वै जनु औधहुँ तें पहुनाई ।
राजिवलोचन राम चले ,
तजि बाप को राज बटाऊ कि नाईं ॥

[३]

घनाक्षरी ।

सिथिल सनेह कहैं कौसिला सुमित्रा जू सों
मैं न लखी सौति सखी भगनी ज्यों सेई है
कहैं मोहि मैया कही मैं न मैया भरत की ,
बलैया लैहों भैया तेरी मैया कैकेई है ॥
'तुलसी' सरल भाय रघुराय मायमानी ,
काय मन बानी हूँ न जानि कै मतेई है ।
बाम बिधि मेरो सुख सिरिससुमन सम ,
ताको छल छुरी कोह कुलिश लै टेई है ॥

[४]

कीजै कहा जीजी जू सुमित्रा परि पाँय कहै ,
'तुलसी' सहावै बिधि सोई सहियतु है ।
रावरा सुभाय राम जन्म ही तें जानियत ,
भरत की मातु को कीवो सो चहियत है ॥

जाई राजघर ब्याहि आई राजघर ,
महाराज-पूत पाए हूँ न सुख लहियतु है ।
देह-सुधा गेह ताहि मृग ने मलीन कियो ,
ताहू पर चाहु बिनु राहु गहियतु है ॥

[श्री रामचन्द्रजी गङ्गा किनारे पार उतरने को खड़े हैं]

सवैया ।

[१]

नाम अजामिल से खल कोटि ,
अपार नदी भव बूड़त काढ़े ।
जो सुमिरे गिरि मेरु सिला ,
कन होत अजा खुर बारिधि बाढ़े ॥
तुलसी ' ज्यहि के पद पङ्कज ते ,
प्रकटी तटनी जो हरै अघ गाढ़े ।
ते प्रभु या सरिता तरिबे कहँ ,
माँगत नाव करारे ह्वै ठाढ़े ॥

[२]

इहि घाट तें थोरिक दूरि अहै ,
कटि लौं जल थाह दिखाइ हौं जू ।
परसै पगधूरि तरै तरनी
घरनी घर क्यों समुझाइ हौं जू ॥
' तुलसी ' अवलम्ब न और कछू ,
लरिका केहि भाँति जिआइ हौं जू ।
बरु मारिए मोहि बिना पग धोए ,
हौं नाथ न नाव चढ़ाइ हौं जू ॥

[३]

रावरे दोष न पायन को,
पगधूरि को भूरि प्रभाव महा है।
पाहन ते बरु बाहन काठ कौ,
कोमल है जल खाइ रहा है॥
तुलसी' सुनि केवट के बरबैन,
हँसे प्रभु जानकी ओर हहा है।
पावन पाय पखारि के नाव,
चढ़ाइ हौं आयसु होत कहा है॥

घनाक्षरी।

[४]

पातभरी सहरी सकल सुत बारे बारे,
केवट की जाति कछु वेद न पढ़ाइ हौं।
सब परिवार मेरो याही लागि राजा जी हौं,
दीन वित्तहीन, कैसे दूसरी गढ़ाइ हौं॥
गौतम की घरनी ज्यों तरनी तरैगी मेरी,
प्रभु सों निषाद ह्वै कै बाद ना बढ़ाइ हौं।
'तुलसी' के ईस राम रावरे से साँची कहौं,
बिना पग धोये नाथ नाव न चढ़ाइ हौं॥

[५]

जिनको पुनीत बारि शिर शिव है पुरारि,
त्रिपथ गामिनी अस वेद कहै गाइकै।
जिनको जोगीन्द्र मुनिबृन्द देव देह धरि,
करत बिबिधि जोग जप मन लाइ कै॥

'तुलसी' जिनकी धूरि परसि अहिल्या तरी,
गौतम सिधारे गृह गौनो सो लिवाइ कै।
तेई पाँय पाइ कै चढ़ाय नाव धोये बिनु,
खैहौं न पठावनी कहै हौं न हँसाइ कै॥

[६]

प्रभुरुख पाइ कै बुलाइ बालक घरनिहिं,
बन्दि कै चरन चहुँ दिसि बैठे घेरि घेरि।
छोटो सो कठौता भरि आनि पानी गङ्गा जू को,
धोइ पाँय पियत पुनीतवारि फेरि फेरि।
'तुलसी' सराहे ताको भाग सानुराग सुर,
बरषैं सुमन जय जय कहैं टेरि टेरि।
बिबिधि सनेह सानी बानी असयानी सुनि,
हँसे राघौ जानकी लषन तन हेरि हेरि॥

सवैया।

[७]

पुर ते निकसी रघुबीर बधू,
धरि धीर दये मग मे डग द्वै।
झलकी भरिमाल कनी जल की,
पटु सूखि गये मधुराधरव॥
फिर बूझत हैं चलनो व कितो,
पिय पर्नकुटी करि हैं कित ह्वै।
तिय की लखि आतुरता पिय की,
अँखियां अति चारु चलीं जल च्वै॥

[८]

ल कों गए लदमण हैं लरिका,
परखौं पिय छाँह घरीक ह्वै ठाढ़े।
पौंछि पसेउ बयारि करौं,
अरु पाँय पखारि हौं भूभुरि डाढ़े॥
'तुलसी' रघुबीर प्रिया श्रम जानि कै,
बैठि बिलम्ब लौं कण्टक काढ़े।
जानकी नाह को नेह लख्यौ,
पुलको तनु बारि बिलोचन बाढ़े॥

[९]

ठाढ़े हैं नौद्रुम डार गहे,
धनु काँधे धरे कर सायक लै।
बिकटी भृकुटी बड़री अँखियाँ,
अनमोल कपोलन की छबि है॥
'तुलसी' ऐसी मूरति आन हिये,
जड़ डारु धौं प्रान निछावर कै।
श्रम सीकर साँवरि देह लसै,
मनौं रारि महातम तारक मै॥

घनाक्षरी।

[१०]

जलज नयन जल जानन जटा हैं सिर,
जोबन उमङ्ग अङ्ग उदित उदार हैं।
साँवरे गोरे बीच भामिनी सुदामिनी सी,
मुनि पट धरे उर फूलन के हार हैं।

करनि सरासन सिलीमुख निषङ्ग कटि ,
अति ही अनूप काहू भूप के कुमार हैं ।
'तुलसी' बिलोकि के तिलोक के तिलक तीनि ,
रहे नर नारि ज्यों चितेरे चित्रसार हैं ॥

[११]

आगे सोहै साँवरो कुँअर गोरो पाछे आछे ,
आछो मुनि वेष धरे लाजत अनङ्ग हैं ।
बान बिसिखासन बसन बन हीं के कटि ,
कसी हैं बनाइनी के राजत निषङ्ग हैं ॥
साथ निसिनाथ मुखी पाथ नाथ नन्दिनी सी ,
'तुलसी' विलोके चित लाइ लेत सङ्ग हैं ।
आनद उमङ्ग मन जोबन उमङ्ग तन ,
रूप की उमङ्ग उमगत अङ्ग अङ्ग हैं ॥

[१२]

सुन्दर बदन सरसीरुह सुहाये नैन ,
मञ्जुल प्रसून माथे मुकुट जटनि के ।
अंसनि सरासन लसत सुचि सरकर ,
तून कटि मुनिपट लूट कपटनि के ॥
नारि सुकुमारि सङ्ग जाके अङ्ग उबटि के ,
बिधि बिरचे बरुथ विद्युत छटनि के ।
गोरे को बरन देखे सोनो न सलोनो लागे ,
साँवरो बिलोके गर्ब घटत घटनि के ॥

[१३]

बलकल बसन धनुबानपानि तूनकटि ,
रूप के निधान घन दामिनी बरन हैं ।
'तुलसी' सुतीय सङ्ग सहज सुहाये अङ्ग ,
नवल कमल हूँ ते कोमल चरन हैं ॥
और सो बसन्त और रति और रतिपति ,
मूरति बिलोके तन मन के हरन हैं ।
तापस बेषै बनाये पथिक पन्थे सुहाये ,
चले लोक लोचननि सुफल करन हैं ॥

सवैया ।

[१४]

बनिता बनी श्यामल गोरे के बीच ,
बिलोकहु री सखि मोहिसी ह्वै ।
मग जोग न कोमल क्यों चलि हैं ,
सकुचात मही पद पङ्कज छ्वै ॥
'तुलसी' सुन ग्राम बधू बिथकी ,
पुलकी तन औ चले लोचन च्वै ।
सब भाँति मनोहर मोहन रूप ,
अनूप हैं भूप के बालक द्वै ॥

[१५]

साँवरे गोरे सलोने सुभाय ,
मनोहरता जित मैन लियो है ।
बान कमान निषङ्ग कसे ,
सिर सोहैं जटा मनिबेष कियो है ॥

सङ्ग लिये विधुबैनी बधू
रति को जेहि रञ्चक रूप दियो है ।
पाँयनता पनही न पयादेहि
क्यों चलि हैं सकुचात हियो है ॥

[१६]

रानी मैं जानी सयानी महा–
पबि पाहन हूँ तें कठोर हियो है ।
राजहु काज अकाज न जान्यों,
कह्यो तिय को जेहि कान कियो है ॥
ऐसी मनोहर मूरति ये,
बिछुरे कैसे प्रीतम लोग जियो है ।
आँखिन में सखि राखिबे जोग,
इन्हें किमि कै बनबास दियो है ॥

[१७]

सीस जटा उर बाहु बिसाल,
बिलोचन लाल तिरौंछी सी भौंहें ।
तून सरासन बान धरे,
'तुलसी' बन मारग में सुठि सौहें ॥
सादर बारहि बार सुभाय,
चितै तुम त्यों हमरो मन मोहें ।
पूँछति ग्रामबधू सिय सों,
कहौ साँवरे से सखि रावरे को हैं ॥

[१८]

सुनि सुन्दर बैन सुधारस साने,
सयानी है जानकी जान भली।
तिरछे करि नैन दै सैन तिन्हैं,
समुझाइ कछू मुसकाइ चली॥
'तुलसी' तेहि औसर सोहै सबै,
अवलोकत लोचन लाहु अली।
अनुराग-तड़ाग में भानु उदै,
बिकसी मनौ मञ्जुल कञ्ज कली॥

[१६]

धरि धीर कहैं चलौ देखिय जाइ,
जहँा सजनी रजनी रहि हैं।
कहि हैं जग पोच न सोच कछू,
फल लोचन आपन तौ लहि हैं॥
सुख पाइ हैं कान सुनैं बतियाँ,
कल आपस में कछु पै कहि हैं।
'तुलसी' अति प्रेम लगी पलकैं,
पुलकी लखि राम हिये महि हैं॥

[२०]

पद कोमल श्यामल गौर कलेवर,
राजत कोटि मनोज लजाए।
कर बान सरासन सीस जटा,
सरसीरुह लोचन सोन सहाए॥

जिन देखे सखी सतभावहु तें,
　　'तुलसी' तिनि तो मन फेरि न पाए।
यहि मारग आज किशोर बधू,
　　बिधुबैनी समेत सुभाव सिधाए॥

[२१]

सुखपङ्कज कञ्जबिलोचन मञ्जु
　　मनोज सरासन सी बनी भौंहें।
कमनीय कलेवर कोमल श्यामल,
　　गौर किशोर जटा सिर सोहें॥
'तुलसी' कटि तून धरैं धनु बान,
　　अचानक दृष्टि परी तिरछौं हैं।
केहि भाँति कहौं सजनी तोहि सौं,
　　मृदु मूरति द्वै निवसी मन मो हैं॥

[२२]

प्रेम सों पीछे तिरीछे पियाहि,
　　चितै चितु दै चले लै चित चोरे।
श्याम शरीर पसेऊ लसै,
　　हुलसै 'तुलसी' लखि सो मन मोरे॥
लोचन लोल चलैं भृकुटी,
　　कल काम कमानहु सों तन तोरे।

राजत राम कुरङ्ग के सङ्ग,
निषङ्ग कसै धनु लौं सर जोरे ॥

[२३]

सर चारिक चारु बनाइ कसे,
कटि पानि सरासन सायक लै।
बन खेलत राम फिरैं मृगया,
'तुलसी' छबि सो बरनै किमि कै ॥
अवलोकि अलौकिक रूप मृगी,
मृग चौंकि चकै चितवै चितु दै।
न डगै, न भगै, जिमि जानि सिली-मुख,
पञ्च धरे रति-नायक है ॥

[२४]

विन्ध्य के बासी उदासी तपो-
बृत-धारी महा बिनु नारि दुखारे।
गौतम तीय तरी 'तुलसी',
सो कथा सुनि भे मुनि वृन्द सुखारे ॥
ह्वै हैं सिला सब चन्द्रमुखी,
परसे पद पङ्कज मञ्जु तिहारे।
कीन्ही भली रघुनायक जू,
करुना करि कानन कौं पगु धारे ॥

रामायण ।

(उत्तरकाण्ड से उपदेश)

सुनहु तात यह अकथ कहानी ।
समुझत बनै न जात बखानी ॥
ईसुर अंस जीव अविनासी ।
चेतन अमल सहज सुखरासी ॥
सो मायाबस भयऊ गुसांई ।
बँध्यो कीर मरकट की नांई ॥
जड़ चेतनहिं ग्रन्थि परि गई ।
जदपि मृषा छूटत कठिनई ॥
तब तें जीव भयो संसारी ।
ग्रन्थि न छूट न होइ सुखारी ॥
श्रुति पुरान बहु कहैं उपाई ।
छूट न अधिक अधिक अरुझाई ॥
जीव हृदय तम मोह बिसेखी ।
ग्रन्थि छुटै किमि परै न देखी ॥
अस संयोग ईस जब करई ।
तबहुँ कदाचित् सो निरुअरई ॥
सात्विक श्रद्धा धेनु सुहाई ।
जो हरि कृपा हृदय बस आई ॥
जप तप संयम नियम अपारा ।
जो श्रुति कहै सुधर्म अचारा ॥

ये तृन हरित चरै जब गाई।
भावबत्स सिसुपाइ पन्हाई॥
होइ निवृत्ति पाइ विश्वासा।
निर्मल मन अहीर निज दासा।
परम धर्ममय पय दुहि भाई।
अवटै अनल अकाम बनाई॥
तोष मरुत तब छमा जुड़ावै।
धृति सम जामन देइ जमावै॥
मुदिता मथै बिचार मथानी।
दम अधार रज सत्य सुबानी॥
तब मथि काढ़ि लेइ नवनीता।
बिमल बिराग सुभग सुपुनीता॥

दोहा।

जोग अग्नि कर प्रगट तब, कर्म सुभासुभ लाइ।
बुद्धि सिरावै ज्ञान घृत, ममता मल जरि जाइ॥
तब विज्ञान निरूपिनी, बुद्धि बिसद घृत पाइ।
चित्त दिया भरि धरै दृढ़, समता दिअटि बनाइ॥
तीन अवस्था तीन गुन, तेहिं कपास तें काढ़ि।
तूल तुरीय सँवारि पुनि, बाती करै सुगाढ़ि॥

सोरठा।

एहिं बिधि लेसै दीप, तेजरासि विज्ञानमय।
जातहिं तासु समीप, जरहिं मदादिक सुलभ सब॥

चौपाई।

सोहमस्मि इति वृत्ति अखण्डा।
दीप सिखा सोइ परम प्रचण्डा॥

आतम अनुभव सुखसु प्रकासा ।
तब भव मूल भेद भ्रम नासा ॥
प्रबल अविद्या कर परिवारा ।
मोह आदि तब मिटै अपारा ॥
तब सोइ बुद्धि पाइ उजियारा ।
उर गृह बैठि ग्रन्थि निरवारा ॥
छोरन ग्रन्थि पावि जो सोई ।
तब यह जीव कृतारथ होई ॥
छोरत ग्रन्थि जानि खग राया ।
बिघ्न अनेक करै तब माया ॥
ऋद्धि सिद्धि प्रेरै बहु भाई ।
बुद्धिहिं लोभ दिखावै जाई ॥
कल बल छल करि जाइ समीपा ।
अँचल बात बुझावै दीपा ॥
होइ बुद्धि जो परम सयानी ।
तिन तन चितवन अनहित जानी ॥
जो जेहि बिघ्न बुद्धि नहि बाँधी ।
तौ बहोरि सुर करहिं उपाधी ॥
इन्द्रिय द्वार झरोखा नाना ।
तहँ तहँ सुर बैठे करि थाना ॥
आवत देखहिं विषय बयारी ।
ते हठि देहिं कपाट उघारी ॥
जब सो प्रभञ्जन उर गृह जाई ।
तबहिं दीप विज्ञान बुझाई ॥

ग्रन्थिन छूटि मिटा सो प्रकासा ।
बुद्धि बिकल भइ बिषय बतासा ॥
इन्द्रिय सुरन न ज्ञान सुहाई ।
बिषय भोग पर प्रीति सदाई ॥
बिषय समीर बुद्धि कृत भोरी ।
तेहिं बिधि दीप को बार बहोरी ॥

दोहा ।

तब फिर जीव बिबिध बिधि, पावै संसृति क्लेस ।
हरिमाया अति दुस्तर, तरि न जाइ बिहगेस ॥
कहब कठिन,समुझब कठिन,साधन कठिन बिबेक ।
होइ घुनाछर न्याय जो, पुनि प्रत्यूह अनेक ॥

चौपाई ।

ज्ञान कि पन्थ कृपान की धारा ।
परत खगेस न लागै बारा ॥
जो निर्विघ्न पन्थ निर्बहई ।
सो कैबल्य परम पद लहई ॥
अति दुर्लभ कैबल्य परम पद ।
सन्त पुरान निगम आगम बद ॥
राम भक्ति सो मुक्ति गुसांई ।
मन इच्छित आवै बरिआंई ॥
जिमि थल बिनु जल रहि न सकाई ।
कोटि भाँति कोउ करै उपाई ॥

तथा मोच्छसुख सुनु खगराई।
रहि न सकइ हरिभक्ति बिहाई॥
अस बिचारि हरि-भक्त सयाने।
मुक्ति निरादरि भक्ति लुभाने॥
भक्ति करत बिनु जतन प्रयासा।
संसृतिमूल अविद्या नासा॥
भोजन करिय तृप्ति हित लागी।
जिमि सो अन्न पचेउ जठरागी॥
असि हरि भक्ति सुगम सुखदाई।
को अस मूढ़ न जाहि सुहाई॥

दोहा।

सेवक सेव्य प्रभाव बिनु, भव न तरिय उरगारि।
भजहु राम-पद-पङ्कज, अस सिद्धान्त बिचारि॥
जो चेतन कहँ जड़ करइ, जड़हिं करइ चैतन्य।
अस समरथ रघुनायकहिं, भजहिं जीव ते धन्य॥

चौपाई।

कहेउँ ज्ञान सिद्धान्त बुझाई।
सुनहु भक्ति मन की प्रभुताई॥
राम भक्ति चिन्तामनि सुन्दर।
बसइ गरुड़ जाके उर अन्तर॥
परम प्रकास रूप दिन राती।
नहिं कछु चहिय दिया घृत बाती॥

मोह दरिद्र निकट नहिं आवहिं।
लोभ बात नहिं ताहि बुझावहिं॥
प्रबल अविद्या तम मिटि जाई।
हारत सकल सलभ समुदाई॥
खल कामादि निकट नहिं जाहीं।
बसइ भक्ति मनि जेहि उर माहीं॥
गरल सुधा सम अरि हित होई।
तेहि मनि बिनु सुख पाव न कोई॥
व्यापहिं मानस रोग न भारी।
जेहि के बस सब जीव दुखारी॥
राम-भक्ति-मनि उर बस जाके।
दुख-लव-लेस न सपनेहुँ ताके॥
चतुर सिरोमन जे जग माँहीं।
जे मनि लागि सुजतन कराहीं॥
सो मनि जदपि प्रगट जग अहई।
रामकृपा बिनु नहिं कोउ लहई॥
सुगम उपाइ पाइबे केरे।
नर हतभाग्य देहिं भट भेरे॥
पावन पर्वत बेद पुराना।
रामकथा रुचिराकर नाना॥
मर्मी सज्जन सुमति कुदारी।
ज्ञान बिराग नयन उरगारी॥

भाव सहित खोजइ जो प्रानी।
पाव भक्तिमनि सब सुख खानी॥
मोरे मन प्रभु अस बिस्वासा।
राम तें अधिक राम कर दासा॥
राम सिन्धु घन सज्जन धीरा।
चन्दन तरु हरि सन्त समीरा॥
सब कर फल हरि भक्त सुहाई।
जो बिनु सन्त न काहू पाई॥
अस बिचारि जो करु सतसङ्गा।
रामभक्ति तेहिं सुलभ बिहङ्गा॥

दोहा।

ब्रह्म पयोनिधि मन्दर, ज्ञान सन्त सुर आहिं।
कथा सुधा मथि काढ़इ, भक्ति मधुरता जाहिं॥
बिरति चर्म असि ज्ञान मद, लोभ मोह रिपु मारि।
जय पाइय सोइ हरि भगति, देखु खगेस बिचारि॥

चौपाई।

पुनि सप्रेम बोलेउ खगराऊ।
जो कृपालु मोहि ऊपर भाऊ॥
नाथ मोहि निज सेवक जानी।
सप्त प्रश्न मम कहहु बखानी॥
प्रथमहिं कहहु नाथ मतिधीरा।
सब तें दुर्लभ कवन सरीरा॥

बड़ दुख कवन कवन सुख भारी ।
सो संक्षेपहि कहहु बिचारी ॥
सन्त असन्त मरम तुम्ह जानहु ।
तिन्ह कर सहज सुभाव बखानहु ॥
कवन पुन्य श्रुतिबिदित बिसाला ।
कहहु कवन अघ परम कराला ॥
मानस रोग कहहु समुझाई ।
तुम्ह सर्बज्ञ कृपा अधिकाई ॥
तात सुनहु सादर अति प्रीती ।
मैं संछेप कहउं यह नीती ॥
नर समान नहिं कवनिउं देही ।
जीव चराचर जाचत जेही ॥
नरक स्वर्ग अपबर्ग निसेनी ।
ज्ञान बिराग भक्ति सुख देनी ॥
सो तनु धरि हरि भजहिं न जे नर ।
होहिं बिषयरत मन्द मन्दतर ॥
कञ्चन काञ्च बदलि सठ लेहीं ।
कर तें डारि परसमनि देहीं ॥
नहिं दरिद्रसम दुख जग माहीं ।
सन्त-मिलन सम सुख कछु नाहीं ॥
पर उपकार बचन मन काया ।
सन्त सुभाव सहज खगराया ॥

सन्त सहहिं दुख पर हित लागी ।
पर दुख हेतु असन्त अभागी ॥
भुरजा तरु सम सन्त कृपाला ।
पर हित सह नित बिपति बिसाला ॥
सन इव खल पर बन्धन करई ।
खाल कढ़ाइ बिपति सहि मरई ॥
खल बिनु स्वारथ परअपकारी ।
अहि मूषक इव सुन उरगारी ॥
पर सम्पदा बिनासि नसाहीं ॥
जिमि ससि हति हिम उपल बिलाहीं ॥
दुष्टहृदय जग आरति हेतू ।
जथा प्रसिद्ध अधम ग्रह केतू ॥
सन्त उदय सन्तत सुखकारी ।
विश्व सुखद जिमि इन्दु तमारी ॥
परमधर्म श्रुति बिदित अहिंसा ।
परनिन्दा सम अघ न गरिसा ॥
हरि-गुरु-निन्दक दादुर होई ।
जन्म सहस्र पाव तन सोई ॥
द्विज-निन्दक बहु नरक भोग करि ।
जग जनमइ बायस सरीर धरि ॥
सुर-श्रुति-निन्दक जे अभिमानी ।
रौरव नरक परहिं ते प्रानी ॥
होहिं उलूक सन्त निन्दारत ।
मोहनिसा प्रिय ज्ञान भानु मत ॥

सब की निन्दा जे जड़ करहीं ।
ते चमगादुर होइ अवतरहीं ॥
सुनहु तात अब मानसरोगा ।
जेहि तें दुख पावहिं सब लोगा ॥
मोह सकल व्याधिन कर मूला ।
तेहि तें पुनि उपजइ बहु सूला ॥
काम बात कफ लोभ अपारा ।
क्रोध पित्त नित छाती जारा ॥
प्रीति करहिं जो तीनिउ भाई ।
उपजइ सन्निपात दुखदाई ॥
बिषय मनोरथ दुर्गम नाना ।
ते सब सूल नाम को जाना ॥
ममता दद्रु कण्डु इरषाई ।
हरष बिषाद गरह बहुताई ॥
अहङ्कार अति दुखद डँबरुआ ।
दम्भ कपट मद मान नहरुआ ॥
तृस्ना उदरबृद्धि अतिभारी ।
त्रिबिधि ईषना तरुन तिजारी ॥
जुग-बिधि ज्वर मत्सर अबिवेका ।
कहँ लगि कहौं कुरोग अनेका ॥

दोहा ।

एक व्याधि तें नर मरहिं, ये असाध्य बहु व्याधि ।
संतत पीड़हिं जीव कहँ, सो किमि लहहिं समाधि ॥
नेम धर्म आचार तप, ज्ञान जज्ञ तप दान ।
भेषज पुनि कोटिक करहिं, रुज न जाहिं हरिजान ॥

चौपाई।

इहिं बिधि सकल जीव जग रोगी।
सोक हरष भय प्रीति बियोगी॥
मानस रोग कछुक मैं गाये।
हैं सब के लखि बिरलनि पाये॥
जाने ते छीजहिं कछु पापी।
नास न पावहिं जन परितापी॥
बिषय कुपथ्य पाइ अङ्कुरे।
मुनिहु हृदय का नर बापुरे॥
राम कृपा नासहिं सब रोगा।
जो इहि भाँति बनइ संजोगा॥
सदगुरु बेदबचन बिस्वासा।
संजम यह न बिषय की आसा॥
रघुपति भक्ति सजीवनमूरी।
अनूपान स्रद्धा मति रूरी॥
इहि बिधि भले कुरोग नसाहीं।
नाहिं तो जतन कोटि नहिं जाहीं॥
जानिय तब मन बिरुज गुसाँई।
जब उर बल बिराग अधिकाई॥
सुमति छुधा बाढ़ै नित नई।
बिषय आस दुर्बलता गई॥
बिमल ज्ञानजल पाइ अन्हाई।
तब उर राम भक्ति रहि छाई॥

सिव अज सुक सनकादिक नारद।
जे मुनि ब्रह्म बिचार बिसारद॥
सब कर मत खगनायक एहा।
करिय राम-पद-पङ्कज नेहा॥
श्रुति पुराण सद्ग्रन्थ कहाहीं।
रघुपति भक्ति बिना सुख नाहीं॥
कमठपीठि जामहिं बरु बारा।
बन्ध्या सुत बरु काहुहिं मारा॥
फूलहिं नभ बरु बहु बिधि फूला।
जीव न लह सुख प्रभु-प्रति-कूला॥
तृषा जाइ बरु मृग-जल-पाना।
बरु जामहिं सससीस बिखाना॥
अन्धकार बरु रबिहिं नसावै।
राम बिमुख सुख जोव न पावै॥

दोहा।

बारि मथे बरु होहि घृत, सिकता तें बरु तेल।
बिनु हरि भजन न भव तरिय, यह सिद्धान्त अपेल॥
मसकहिं करइ बिरञ्चि प्रभु, अजहिं मसक तें हीन।
अस बिचारि तजि संसय, रामहिं भजहिं प्रबीन॥

विनय

['बिनयपत्रिका'से।]

[१]

काहे न रसना रामहिं गावहि,
निसिदिन परअपवाद बृथा कत रटि रटि राग बढ़ावहि।
नरमुख सुन्दर मन्दिर पावन बसि जनि ताहि लजावहि॥

ससि समीप रहि त्यागि सुधा कत रवि-कर-जल कहँ धावहि।
कामकथा कलि कैरव चन्दिनि सुनत स्रवण दै भावहि॥
तिनहिं हटकि कहि हरि कल कीरति बरन कलङ्क नसावहि।
जातरूप मति युवति रुचिर मनि रचि रचि हार बनावहि॥
सरन सुखद रवि-कुल-सरोज-रवि राम नृपहिं पहिरावहि।
बाद बिवाद स्वाद तजि भजि हरि सरल चरित चित लावहि॥
'तुलसिदास' भव तरहि तिहूँ पुर तू पुनीति जस पावहि।

[२]

जाके प्रिय न राम बैदेही,
सो त्यागिये कोटि बैरी सम जद्यपि परम सनेही।
तज्यो पिता प्रहलाद, बिभीषण बन्धु, भरत महतारी॥
बलि गुरु तज्यौ कन्त बृज-बनतहिं भय जग मङ्गलकारी।
नाते नेह राम के मनियत सुहृद सुसेव्य जहाँ लौं।
अञ्जन कहा आँखि जेहि फूटै बहुतौ कहौं कहाँ लौं॥
'तुलसी' सो सब भाँति परम हित पूज्य प्राण तें प्यारो।
जासों होइ सनेह रामपद यह तो मतो हमारो॥

[३]

लाभ कहा मानुष तन पाये,
काय बचन मन सपनेहुं कबहुँक घटत न काज पराये।
जो सुख सुरपुर नरक गेह बन आवत बिनहिं बुलाये॥
तेहि सुख कहँ बहु जतन करत मन समुझत नहिं समुझाये।
परदारा पर द्रोह मोहबस किये मूढ़ मन भाये॥

गर्भवास दुखरासि जातना तीव्र बिपति बिसराये।
भय. निद्रा, मैथुन, अहार सब के समान जग जाये॥
सुर-दुर्लभ-तन धरि न भजे हरि मद अभिमान गँवाये।
गई न निज पर बुद्धि सुद्ध ह्वै रहि न राम लय लाये॥
'तुलसिदास' यह अवसर बीते का पुनि के पछिताये॥

[४]

सकुचत हौं अतिराम! कृपानिधि क्योंकर बिनय सुनावों।
सकल धरम बिपरीति करत केहि भाँति नाथ मन भावों॥
जानतहू हरि रूप चराचर मैं हठि नयन न लावों।
अञ्जन केस सिखा जुवती तहँ लोचन सलभ पठावों॥

[५]

स्रवनन को फल कथा तुम्हारी यह समुझौं समुझावों।
तिन स्रवनन परदोष निरन्तर सुनि सुनि भरि भरि तावों॥
जेहि रसना गुन गाइ तिहारे बिनु प्रयास सुख पावों।
तेहि मुख पर अपवाद भेक ज्यों रटि हरि जन्म नसावों॥

[६]

करहु हृदय अति बिमल बसहिं हरि कहि कहि सबहिं सिखावों।
हौं निज उर अभिमान मोह मद खल मण्डली बसावों॥
जो तनु धरि हरिपद साधहिं जन सो बिनु काज गँवावों।
हाटकघट भरि धस्यो सुधा गृह तजि नभ कूप खनावों॥

[७]

मन क्रम बचन लाय कीन्हें अघ ते करि जतन दुरावौं।
परप्रेरित इरषा बस कबहुँक जिय सुभ कछु सो जनावौं॥
विप्रद्रोह जनु बाँट परयो हठि सब सों बैर बढ़ावौं।
ताहू पर निज मति बिलास सब सन्तन माँझ गनावौं॥

[८]

निगम सेष सारद निहोरि जो अपने दोष कहावौं।
तौ न सिराहिं कलपसत लगि प्रभु कहँा एक मुख गावौं॥
जो करनी आपुनी बिचारौं तौ कि सरण हौं आवौं।
मृदुल सुभाव सील रघुपति को सो बल मनहिं दिखावौं॥
'तुलसिदास' प्रभु सो गुन नहिं जेहि सपनेहुँ तुमहिं रिझावौं।
नाथ कृपा भव सिन्धु धेनुपद सम जो समुझि नियरावौं॥

महाकवि केशवदास जी ।

[जन्म सं०१६१२ वि०, मृत्यु सं०१६७४ वि० । ये महाकवि उरछा-बुन्देलखण्ड में हुए थे । ये वहाँ के राजा इन्द्रजीत के दरबार में थे । ये महाकवि भाषा के आचार्य माने जाते हैं । इन्होंने रामचन्द्रिका, रसिकप्रिया, कविप्रिया और विज्ञानगीता काव्य निर्माण किये हैं । एक बार ये आगरे गये और वहाँ बीरबल की प्रशंसा में एक कवित्त कहा, जिस पर उन्होंने प्रसन्न हो कर ६ लाख रुपये दिये । कहा जाता है कि ये प्रेत हो गये थे और गोस्वामी तुलसीदास जी ने इन्हें प्रेतयोनि से छुड़ाया था ।]

रामाश्वमेध ।

दोहा ।

विश्वामित्र वशिष्ठ सों, एक समय रघुनाथ ।
आरम्भों केशव करन, अश्वमेध की गाथ ॥

राम—(चामर छन्द) मैथिली समेत तो अनेक दान मैं दियो ।
राजसूय आदि दै अनेक जन्म मैं कियो ॥
सीय त्याग पाप तें हिये सों हौं महा डरौं ।
और एक अश्वमेध जानकी बिना करौं ॥

वशिष्ठ—(दोहा) धर्म कर्म कछु कीजई, सफल तरुनि के साथ ।
ता बिन जो कछु कीजई, निष्फल सोई नाथ ॥

तोटक छन्द ।

करिये युत भूषण रूप रई ।
मिथिलेश सुता इक स्वर्णमई ॥

ऋषिराज सबै ऋषि बोलि लिये ।
सुचि सों सब यज्ञ बिधान किये ॥
हयशालन तें हय छोरि लियो ।
शशिवर्ण सो केशव शोभरयो ॥
श्रुति श्यामल एक बिराजत है ।
अलिस्यो सरसीरुह लाजत है ॥

रूपमाला छन्द ।

पूजि रोचन स्वच्छ अच्छत पट्ट बाँधिय भाल ।
भूषि भूषण शत्रु दूषण छोड़िये तेहि काल ॥
सङ्ग लै चतुरङ्ग सेनहि शत्रुहन्ता साथ ।
भाँति भाँतिन मान दै पठये सु श्री रघुनाथ ॥
जात है जित बाजि केशव जात हैं तित लोग ।
बोलि विप्रन दान दीजत तत्र तत्र सुभोग ॥
वेणु बीण मृदङ्ग बाजत दुन्दुभी बहु भेव ।
भाँति भाँतिन होत मङ्गल देव से नर देव ॥

कमल छन्द ।

राघव की चतुरङ्ग चमू चय,
को गनै केशव राज समाजनि ।
सूर तुरङ्गन के उरझैं,
पग तुङ्ग पताकनि की पट साजनि ॥

टूटि परैं तिन तें मुकता,
धरणी उपमा बरणी कवि राजनि।
चिन्द किधौं मुख फेनन के,
किधौं राजश्री स्रवै मङ्गल लाजनि॥

[२]

राघव की चतुरङ्ग चमू चय,
धूरि उठी जलहू थल छाई।
मानो प्रताप हुताशन धूम सो,
'केशवदास' अकाशन भाई॥
मेटि के पञ्च प्रभूत कि धौं,
बिधु रेणु मयी नव रीति चलाई।
दुःख निवेदन को भवभार को,
भूमि किधौं सुर लोक सिधाई॥

दण्डक छन्द।

नाद पूरि धूरि पूरि तूरि बन चूरि गिरि,
शोषि शोषि जल भूरि फूरि थल गाथ की।
केशवदास आस पास ठौरि ठौरि राखि जन,
तिनकी सम्पत्ति सब अपने ही हाथ की॥
उन्नत नवाइ नत उन्नत नवाई भूप,
शत्रुन की जीविकाति मित्रन के हाथ की।
मुद्रित समुद्र सात मुद्रा निज मुद्रित कै,
आई दिशि दिशि जीति सेना रघुनाथ की

दोहा ।

दिशि विदिशनि अवगाहि कै,सुख ह्वौ 'केशवदास' ।
बालमीकि के आश्रमहि, गयो तुरङ्ग प्रकास ॥

दोधक छन्द ।

दूरिहि तें मुनि बालक धाये ।
पूजित बाजि बिलोकन आये ॥
भाल को पट्ट जहाँ लग बाँच्यौ ।
बाँधि तुरङ्गम जय रस राँच्यौ ॥

दोधक छन्द ।

घोर चमू चहुँ ओर तें गाजी ।
कौनहि रे यह बाँधिय बाजी ॥
बोलि उठे लव मैं यह बाँध्यो ।
यों कहि कै धनु शायक साँध्यो ।
मारि भगाय दिये सिगरे यों ।
मन्मथ के शर ज्ञान घने ज्यों ॥

धीर छन्द ।

योधा भगे बीर शत्रुघ्न आये ।
कोदण्ड लीन्हे महारोष छाये ॥
ठाढ़्यौ तहाँ एक बालै बिलोक्यो ।
रोक्यो तहीं जोर नाराच मोक्यो ॥

(सुन्दरी छन्द)

शत्रुघ्न—बालक छाँड़ि दै छाँड़ि तुरङ्गम ।
तो सों कहा करौं सङ्गर सङ्गम ॥

ऊपर बीर हिये करुणा रस।
बीरहि विप्र हते न कहूँ यश॥

लव तारक छन्द

कछु बात बड़ी न कहौ मुखथोरे।
लव सों न जुरो लवणासुर भोरे॥
द्विजदोष नहीं बल ताको सँहाऱ्यो।
मरि ही जु रह्यो सु कहा तुम माऱ्यो॥

चामर छन्द।

राम बन्धु बाण तीन छोड़िये त्रिशूल से।
भाल में बिशाल ताहि लागियो ते फूल से॥

लव।

घात कीन राज तात! गाततैं कि पूजियो।
कौन शत्रु तैं हत्यौ जु नाम शत्रुहा लियो॥

निशिपालिका छन्द।

रोष करि बाण बहु भाँति लव छण्डियो।
एक ध्वज सूत युग तीन रथ खण्डियो॥
शस्त्र दशरत्थ-सुत अस्त्र कर जो धरै।
ताहि सिय-पुत्र तिल तूल सम खण्डरै॥

तारक छन्द।

रिपुहा तब बाण बहै कर लीन्हो।
लवणासुर को रघुनन्दन दीन्हो॥
लव के उर में उरझ्यो वह पत्री।
मुरझाय गिऱ्यो धरणी महँ छत्री॥

तोटक छन्द ।

मोहे लव भूमि परे जबहीं,
　　जय दुन्दुभि बाजि उठी तबहीं ।
भुव तें रथ ऊपर आनि धरे,
　　शत्रुघ्न सों यों करुणानि भरे ॥
घोड़ो तब हीं तिन छोरि लयो,
　　शत्रुघ्न हिं आनन्द चित्त भयो ।
लै के लव को ता चले जब हीं,
　　सीता पहँ बाल गये तब हीं ॥

झूलना छन्द ।

बालक—सुनु मैथिली ! नृप एक को लव बाँधियो बर बाजि ।
　　चतुरङ्ग सैन भगाइ कै तब जीतियो वह आजि ॥
　　उर लागि गो सर एक को महि में गिर्यौ मुरझाय ।
　　वह बाजि लै लव लै चल्यो नृप दुन्दुभीन बजाइ ॥

दोहा ।

सीता गीता पुत्र की, सुनि सुनि भयी अचेत ।
मनो चित्र की पुत्रिका, मन क्रम बचन समेत ॥

झूलना छन्द ।

सीता—रिपु हाथ श्री रघुनाथ के सुत क्यों परे करतार ।
　　पति देवता सब काल जो लव जो मिले इहि बार ॥
　　ऋषि हैं नहीं कुश हैं नहीं लव लेइ कौन छुड़ाइ ।
　　बन माँझि टेर सुनी कहूँ कुश आइयो अकुलाइ ॥

दोहा ।

कुश—रिपुहिं मार संहारि दल, लव कहँ लेउ छुड़ाइ ।
लवहि मिले हौं देखि हौं, जननी तेरे पाँइ ॥

सवैया ।

गहियो सिन्धु सरोवर सों,
जेहि बाली बली बर सो बर पेख्यो ।
ढाहि दिये सिर रावण के,
गिर से गुरु जात न जानत हेख्यो ॥
शूल समूल उखारि लियो,
लवणासुर पीछे तें आइ सु टेख्यो ।
राघव को दल मत्तकरी ।
सुर अङ्कुश दै कुश कै सब फेख्यो ॥

दोहा ।

कुश की टर सुनी जहीं, फूल फिरे शत्रुघ्न ।
दीप बिलोकि पतङ्ग ज्यों, यदपि भयो बहु विघ्न ॥

मनोरमा छन्द ।

रघुनन्दन को अवलोकत ही कुश ।
उर मांझ हयो शर शुद्ध निरङ्कुश ॥
ते गिरे रथ ऊपर लागत ही शर ।
गिरि ऊपर ज्यों गजराज कलेवर ॥

सुन्दरी छन्द।

जूझि गिरे जब हीं अरिहारन।
भाजि गये तबही भट के गन॥
काढ़ि लियो जब हीं लव को शर।
कण्ठ लग्यो तबहीं उठि सोदर॥

दोहा।

मिले जो लव कुश कुशल सों, बाजि बाँधि तरु मूल।
रण महि ठाढ़े शोभिजै, पशुपति गणपति तूल॥

रूपमाला छन्द।

यज्ञ मण्डल में हते रघुनाथ जू तिहिं काल।
चर्म अङ्ग कुरङ्ग को शुभ स्वर्ण की सँगबाल॥
आस पास ऋषीश शोभित सूर सोदर साथ।
आइ भग्गुल लोग बरणे युद्ध की सब गाथ॥

महाकवि बिहारीलाल चौबे।

[जन्म सं०१६६० वि०, मृत्यु सं० १७२० वि० । ये माथुर चतुर्वेदी ब्राह्मण थे । जयपुर के महाराज जयसिंह सवाई के यहाँ रहते थे । ये बड़े खरे और स्पष्ट-वक्ता थे । यद्यपि ये महाराज जयसिंह के यहाँ रहे, तथापि उनकी खुशामद न की। इनका सब से अपूर्व ग्रन्थ सतसई है, जो बिहारी सतसई के नाम से प्रसिद्ध है। लोग कहते हैं कि अक्षर कामधेनु हैं उनमें से जो अर्थ चाहो निकाल लो; पर यह बात इसी ग्रन्थ से मालूम होती है । इस पर कोई २० टीका हुई हैं । इसकी प्रशंसा में कहा गया है:—

"सतसइया के दोहरे, ज्यों नावक के तीर।
देखत में छोटे लगें, घाव करैं गम्भीर ॥"]

नीति के दोहे ।

मोर मुकुट कटि काछनी, कर मुरली उर माल।
यहि बानक मो मन बसौ, सदा बिहारी लाल ॥

कोटि जतन कोऊ करै, परै न प्रकृतिहिं बीच।
नल बल जल ऊँचो चढ़ै, अन्त नीच को नीच ॥

ओछे बड़े न ह्वै सकैं, लगि सतरौहैं बैन।
दीरघ होहिं न नैक हू, फारि निहारे नैन ॥

मीत न नीत गलीत यह, जो धरिये धन जोरि।
खाये खरचे जो बचै, तो जोरिये करोरि ॥

जेती सम्पति कृपिन के, तेती सूमति जोरि।
बढ़त जात ज्यों ज्यों उरज, त्यों त्यों होत कठोर ॥

घर घर डोलत दीन ह्वै, जन जन याँचत जाइ।
दियें लोभ चसमा चखनि, लघु पुनि बड़ो लखाइ॥

को कहि सकै बड़ेन सों, लखे बड़ी यो भूल।
दीन्हे दई गुलाब के, इन डारनि वे फूल॥

नर की अरु नल नीर की, गति एकै कर जोय।
जेतो नीचो ह्वै चलै, ते तो ऊँचो होय॥

बढ़त बढ़त सम्पति सलिल, मन सरोज बढ़ि जाय।
घटत घटत फिर ना घटै, बरु समूल कुँभिलाय॥

कर लै सूँघि सराहि कै, सबै रहे गहि मौन।
गन्धी! गन्ध गुलाब को, गँवई गाहक कौन॥

करि फुलेल को आचमन, मीठो कहत सराहि।
रे गन्धी! मति अन्ध तू, अतर दिखावत काहि॥

बड़े न हूजे गुनन बिनु, बिरद बड़ाई पाय।
कहत धतूरे सों कनक, गहनो गढ़यो न जाय॥

कनक कनक तें सौ गुनी, मादकता अधिकाय।
वह खाये बौरात है, यह पाये बौराय॥

सङ्गति सुमति न पावही, परे कुमति के धन्ध।
राखहु मेल कपूर में, हीङ्ग न होत सुगन्ध॥

को छूट्यो यहि जाल परि, कत कुरङ्ग अकुलाय।
ज्यों ज्यों सुरझि भज्यो चहै, त्यों त्यों अरुझत जाय॥

कैसे छोटे नरनि तें, सरत बड़ेनि के काम।
मढ़यो दमामा जात क्यों, लै चूहे के चाम॥

अति अगाध अति औथरो, नदी कूप सरबाय।
सो ताको सागर जहाँ, जाकी प्यास बुझाय॥

सोरठा।

मैं देख्यो निरधार, यह जग काचो काँच सो।
एकै रूप अपार, प्रतिबिम्बित लखियत तहाँ॥

दोहा।

दीरघ साँस न लेहि दुख, सुख साँईहि न भूल।
दई दई क्यों करत है, दई दई सु कबूल॥

कहलाने एकत बसत, अहि मयूर मृग बाघ।
जगत तपोबन सो कियो, दीरघ दाघ निदाघ॥

कोऊ कोरिक संग्रहो, कोऊ लाख हजार।
मो सम्पति यदुपति सदा, बिपति बिदारनहार॥

महाकवि भूषण त्रिपाठी ।

[जन्म सं० १६९२ वि०, मृत्यु सं० १७७२ । ये कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे और टिकमाँपुर जि० कानपुर के रहने वाले थे । पहिले ये रुद्रराम सुलंकी चित्रकूट वाले के यहाँ रहे; फिर बादशाह औरङ्गज़ेब के यहाँ । वहाँ बादशाह के क्रुद्ध होजाने पर वे सितारे के शिवाजी महाराज के यहाँ चले गये । फिर पन्ना के छत्रशाल के यहाँ रहे और कुमाँऊ नरेश के यहाँ गये । इन्होंने शिवाबावनी, शिवराजभूषण, छत्रशालदसक आदि ग्रन्थ बनाये हैं । इन ऐसा वीर-रस की कविता करने वाला हिन्दी का कवि कोई नहीं हुआ ।]

राजगढ़-वर्णन ।

सवैया ।

जा पर साहि तनै सिवराज,
सुरेश की ऐसी सभा सुभ साजै ।
यों कवि 'भूषण' जंपत है,
लखि सम्पति को अलकापति लाजै ॥
ता मधि तीनहुँ लोक की दीपति,
ऐसो बड़ो गढ़राज बिराजै ।
बारि पतालसी माची मही,
अमरावती की छबि ऊपर छाजै ॥

हरिगीतिका छन्द ।

मनिमय महल सिवराज के,
इमि राजगढ़ में राजहीं ।
लखि जच्छ किन्नर सुर असुर,
गन्धर्व हौसनि साजहीं ॥

उत्तङ्ग मरकत-मन्दिरन-मधि,
बहु मृदङ्ग सु बाजहीं।
घन-समर मानहुँ घुमड़ि करि घन,
घन-पटल गल-गाजहीं ॥

मुकतानि की झालरनि मिलि, मनि लाल छुज्जा छाजहीं।
सन्ध्या समै मानहु नखत गन, लाल अम्बर राजहीं ॥
जहँ तहाँ ऊरध उठे हीरा, किरन-घन समुदाय हैं।
मानौं गगन तम्बू तन्यौ, ताके सपेत तनाय हैं ॥

'भूषण' भनत जिहि परसि कै, मनि पुहुप रागन की प्रभा।
प्रभु-पीत-पट की प्रगट पावत, सिन्धु मेघन की सभा ॥
मुख नागरिन के राजहीं कहु, फटिक महलन सङ्ग में।
लसि अमल कोमल कमल, मानहु गगन गङ्ग-तरङ्ग में ॥

आनन्द सों सुन्दरिन के कहुँ, इन्दु बदन उदोत हैं।
नभसरित के प्रफुलित कुमुदकुल, कमल बिकसित होतहैं ॥
कहुँ बावरी सर कूप राजत, बद्धमनि सोपान हैं।
जहँ हँस सारस चक्र बाक, बिहार करत गुमान हैं ॥

कितहू बिसाल प्रवाल जालनि, जटित अङ्गन-भूमि है।
जहँ ललित बागनि द्रुमलतनि, मिलि रहे झिलि मिलि भूमि है॥
चम्पा चमेली चारु चन्दन, चारिहू दिसि देखिए।
लवली लवङ्ग इलानि केरे, लाखहों लगि लेखिए ॥

कहुँ केतकी कदली करौंदा, कुन्द अरु करबीर हैं।
कहुँ दाख दाड़िम सेब कटहर, तूत अरु जम्बीर हैं ॥
कितहूँ कदम्ब-कदम्ब कहुँ, हिन्ताल ताल तमाल हैं।
पीयूष तें मीठे फले, कितहूँ रसाल रसाल हैं ॥

पुंनाग कहुँ कहुँ नाग-केसरि, कितहुँ बकुल असोक हैं।
कहुँ, ललित अगर गुलाब पाटल, पटल बेला-थोक हैं॥
कितहूँ निवारी माधवी, सिंगार हार कहूँ लसै।
जहँ भाँति भाँतिन रङ्ग रङ्ग, बिहङ्ग आनँद सों रसै॥

छप्पय।

लसत बिहङ्गम बहुत, बहुत बहु भाँति बाग महँ।
कोकिल कीर कपोत, केलि कलकल करन्त तहँ॥
मञ्जुल महरि मयूर, चटुल चातक चकोरगन।
पियत मधुर मकरन्द, करत झङ्कार भृङ्ग गन॥
'भूखन' सुबास फल-फूल-जुत, छहु रितु बसत बसन्त जहँ।
इमि राजदुग्ग राजत रुचिर, अति सुखिया सिवराज कहँ॥

[२]

छत्रसाल दसक।

इक हाड़ा बूँदी धमनी मरद महोबे वाल।
सालत नौरङ्गजेब के ये दोनों छत्र-साल॥
ये देखो छत्ता पता ये देखो छत्र-साल।
ये दिल्ली की ढाल ये दिल्ली-ढाहन-वाल॥

कवित्त।

रैया राव चम्पत को चढ़ो छत्र-साल-सिंह,
'भूखन' भनत गजराज जोम जमकैं।
भादों की घटासी उठी गरदैं गगन घेरैं,
सेलैं समसेरैं फेरैं दामिनी सी दमकैं॥

खान उमराउन के, आन राजा राउन के,
सुनि उर लागैं घन कैसी घमकैं।
बैहर बगारन की अरि के अगारन की,
नागतीं तगारन की नगारन की धमकैं॥

[२]

हैबर हरद साज गै बर गरद समै,
पैदर के ठठ्ठ फौज जुरी तुरकानें की।
'भूखन' भनत राव चम्पत को छत्र-साल,
रुप्यौ रण ख्याल ह्वै कै ढाल हिन्दुवाने की॥
कैयक करोर एक बार बैरी मार डारे,
रञ्जक दगन मानौ अगिन रिसाने की।
सेर अफगन सेन सगर-सुतन लगी,
कपिल-सराय लौं तराप तोपखाने की॥

[३]

दारासाहि औरङ्ग जुरे हैं दोऊ दिल्ली दल,
एकै गए भाजि एकै गए रुंधि चाल में।
बाजीकर कोऊ दगाबाजी करि राखो जिहि,
कैसेहूँ प्रकार प्रान बचत न काल में॥
हाथी तें उतरि हाड़ा जूझौ लोह लङ्गर दै,
एती लाज कामें जेती लाज छत्र-साल में।
तन तरवारन में, मन परमेसुर में
प्रन स्वामि-कारज में माथो हर-माल मे॥

[४]

अत्र गहि छत्र-साल खिजो खेत बेतवे को,
　　उतते पठानन हूँ कीन्हीं झुकि झपटैं।
हिम्मत बड़ी के गवड़ी के खिलवारन लों,
　　देत से हजारन हजार बार लपटैं॥
'भूखन' भनत काली हुलसी असीसन कों,
　　सीसन कों ईस की जमात जोर जपटैं।
समद लों समद की सेना पै बुँदेलन की,
　　सेलैं समसेरैं भईं बाड़ब की लपटैं॥

[५]

चले चन्दबान घनबान औ कुहूकबान,
　　चलत कमान धूम आसमान छुवै रह्यौ।
चली जमदाढ़ै बाढ़वारैं तरवारैं जहाँ,
　　लोह आँच जेठ को तरन मान ह्वै रह्यौ॥
ऐसे समै फौजें बिचलाई छत्र-साल सिंह,
　　अरि के चलाये पाँय बीर रस च्वै रह्यौ।
हय चले, हाथी चले, सङ्ग छाँड़ि साथी चले,
　　ऐसी चलाचली में अचल हाड़ा ह्वै रह्यौ॥

[६]

निकसत मियान तैं मयूखैं प्रलै-भान कैसी।
　　फारै तम तोमर गयन्दन के जाल की।
लागत लपट कण्ठ बैरिन के नागिन सी,
　　रुद्र ही रिझावै दै दै मुण्डन की माल की॥

लाल छितिपाल छत्र-साल महा-बाहु-बली,
कहाँ लौं बखान करौं तेरी करवाल की।
प्रतिभट कटक कटीले केते काटि काटि,
कालिकासी किलकि कलेऊ देत काल की॥

[७]

रहत अछक पै मिटै न धक पीवन की,
निपट जु नागी डर काहू के डरै नहीं।
भोजन बनावै नित चोखे खान खानन की,
स्रोनित पचावै तऊ उदर भरै नहीं॥
उगलित आसो सोऊ सुकल समर बीच,
राजै राउ बुद्धकर बिमुख परै नहीं।
तेग या तिहारी मतवारी को अचक जौ लौं,
तौ लौं गजराजन की गचक करै नहीं॥

[८]

भुज भुजगेस के वै सङ्गिनी भुजङ्गिनी सी,
खेदि खेदि खाती देह दारुण दलन के।
बखतर पाखरनि बीच धसि जाति मीन,
पैरि पार जात परवाह ज्यों जलन के॥
रैया राव चम्पत के छत्र-साल महाराज,
'भूखन' सकत को बखानि यो बलन के।
पच्छी पर छीने ऐसे परे पर छीने बीर,
तेरी बरछी ने बर छीने हैं खलन के॥

[६]

चाकचक चमू के अचाक चक चहूँ ओर ,
चाकसी फिरत धाँक चम्पति के लाल की ।
'भूखन' भनत बादसाही मारि जेरि करि ,
काहू उमराव न करेरी करबाल की ॥
सुनि सुनि रीति बीर दैत के बड़प्पन की ,
थप्पन उथप्पन की रीति छत्र-साल की ।
जङ्ग जीति लेवा ते ह्वै कै दाम देवा भूप ,
सेवा लागे करन महेवा महिपाल की ॥

[१०]

राजत अखण्ड तेज छाजत सुयश बड़ो ,
गाजत गयन्द दिग्गजनि हीये साल को ।
जाहि के प्रताप सों मलीन आफताब होत ,
ताप तजि दुर्जन करत बहु ख्याल को ॥
साजि सजि गजतुरी कोतल कतारैं दीन्हैं ,
भूखन भनत ऐसे दीन-प्रतिपाल को ।
और राजा राव मन एकहू न ल्याउ अब ,
साहू को सराहौं कि सराहौं छत्र-साल को ॥

कविवर गिरिधर दास।

[जन्म सं० १७७० वि०। ये कम्पिला के रहने वाले थे कुछ लोगों का कहना है कि ये माथुर चतुर्वेदी थे। ये जयपुर के महाराज सवाई जगसिंह के यहाँ रहे। उन्होंने इन्हें कविराय की पदवी दी, इन्होंने नीति की सौ कुण्डलियाँ भी बनायी हैं।]

कुण्डलियाँ।

चिन्ता ज्वाल शरीर में बनि दावा लगि जाय।
प्रगट धुआँ नहिं संचरै उर अन्तर धुँधआय॥
उर अन्तर धुँधआय जरै जिमि काँच को भट्टी।
रक्त माँस जरिजाय रहै हड्डिन की टट्टी॥
कह 'गिरिधर' कविराय सुनो हो मेरे मिन्ता।
सो नर कैसे जियैं कि जिन घट व्यापै चिन्ता॥

[२]

धोखे दाड़िम के सुआ गयो नारियल खान।
खम खाई पाई सजा फिर लाग्यो पछतान॥
फिर लाग्यौ पछतान बुद्धि अपनी कों रोयो।
निरगुनियन के पास बैठि गुन अपनो खोयो॥
कह 'गिरिधर' कविराय कहूँ जैये जनि ओखे।
चोंच खटक कैं टूटि सुवा दाड़िम के धोखे॥

[३]

बीती ताहि बिसार दे आगे की सुधि लेय।
जो बनि आवै सहज में ताही में चित देय॥

ताही में चित देय बात जासों बनि आवै ।
दुरजन हँसै न कोय चित्त में खेद न पावै ॥
कह 'गिरिधर कविराय यहै कर मन परतीती ।
आगे कौं सुख होय समझ बीती सो बीती ॥

[४]

साँई पुर पाला परयो आसमान तें आय ।
पंगुहि आँधे छोड़ि कैं पुर जन चले पराय ॥
पुरजन चले पराय अन्ध इक मतौ बिचारयो ।
पंगु कन्ध कै लियो दृष्टि बाकी पगु धारयौ ॥
कह 'गिरिधर' कविराय मतौ ह्वै चलिये साईं ।
बिना मते को राज गयो रावन की नाईं ॥

[५]

नारी अति बल होत है अपने कुल को नास ।
कौरव पाण्डव बंस को कियो द्रौपदी नास ॥
कियो द्रौपदी नास, कैकेई दसरथ मारेउ ।
राम लखन से पुत्र तेऊ बनबास सिधारेउ ॥
कह 'गिरिधर' कविराय रहै नर सदा दुखारी ।
सो नर सत्यानास जहाँ है अति बल नारी ॥

[६]

दौलत पाय न कीजिये सपनेहु में अभिमान ।
चञ्चल जल दिन चारि कौ ठाउँ न रहत निदान ॥
ठाउँ न रहत निदान जियत जग में यश लीजै ।
मीठे बचन सुनाय बिनय सब ही की कीजै ॥
कह 'गिरिधर' कविराय अरे यह सब घट तौलत ।
पाहुन निसि दिन चारि रहत सब ही के दौलत ॥

[७]

गुन के गाहक सहस नर बिनु गुन लहत न कोय ।
जैसे कागा कोकिला शब्द सुनै सब कोय ॥
शब्द सुनै सब कोय कोकिला सबै सुहावन ।
दोऊ को रँग एक, काग सब भये अपावन ॥
कह 'गिरिधर' कविराय सुनो हे ठाकुर मन के !
बिन गुन लहै न कोय सहस नर गाहक गुन के ॥

[८]

सिंहिनि सिखवत सिंह कहँ पिय बेड़ा परै सँभार ।
जेहि हाथैं गोपर हन्यो तेहि मेढ़क जनि मार ॥
तेहि मेढ़क जनि मार, कुलहि जनि दोष लगावै ।
बरु फाका करि मरै जगत में शोभा पावै ॥
कह 'गिरिधर' कविराय हँसे जम्बुक औ दिंगिनि ।
समय परे की बात सिंह कों सिखवत सिंहिनि ॥

[९]

हीरा अपनी खान कों बार बार पछताय ।
गुन कीमत जानै नहीं तहाँ बिकान्यौ आय ॥
तहाँ बिकान्यौ आय, छेद करि कटि में बाँध्यो ।
बिन हरदी बिन लोन माँस ज्यों फूहर राँध्यो ॥
कह 'गिरिधर' कविराय कहाँ लगि धरिये धीरा ।
गुन कीमत घटि गयी यही कहि रोयो हीरा ॥

[१०]

हँसा ! हियँ रहिये नहीं, सरवर गयो सुखाय ।
कालि तुम्हारी पीठ पै बगुला धरि हैं पाँय ॥
बगुला धरि हैं पाँय, यहाँ आदर नहिं ह्वै है ।
जगत हँसाई होय, बहुरि मन में पछितै है ॥
कह 'गिरिधर' कविराय, दिनै दिन बाढ़ै सँसा ।
याहू में घटि जाय तबै का करि है हँसा ॥

[११]

क्यारी करै कपूर की मृगमद बरहा बन्ध ।
सींचै केवरा गुलाब तें, लहसुन तजै न गन्ध ॥
लहसुन तजै न गन्ध रुद्र अगर संयूता ।
कबहुँ अहै गजराज कबहुँ सूकर के पूता ॥
कह 'गिरिधर' कविराय वेद भाषै यह सारी ।
बीज बयो सो होय कहा करै उत्तम क्यारी ॥

[१२]

गदहा थोरे दिनन में खूद खाइ इतरात ।
अफरान्यो मारन कह्यौ ऐराक़ी कों लात ॥
ऐराक़ी कों लात देत सङ्का नहिं आनै ।
ऐराक़ी सँग रहै ताहि नहिं कोऊ जानै ॥
कह 'गिरिधर' कविराय रहैगो तो लों जबहा ।
ऐराक़ी की लात सहैगो कैसे गदहा ॥

[१३]

लाठी में गुन बहुत हैं, सदा राखिये सङ्ग।
गहिरी नदि नारा जहाँ तहाँ बचावै अङ्ग॥
तहाँ बचावै अङ्ग झपट कुत्ता कों मारै।
दुसमन दावागीर होय ताहूँ को झारै॥
कह 'गिरिधर' कविराय सुनो हो धूर के बाठी।
सब हथियारन छाँड़ि हाथ महँ लीजै लाठी॥

[१४]

जियबो मरिबो वे उनै, यह नहिं अपने हाथ।
जानत हैं वे नन्दसुत बिहँसत बछुरन साथ॥
बिहँसत बछुरन साथ चारि युग के रखवारे।
इन्द्रमान जिन हस्यो बिपति के काटन हारे॥
कह'गिरिधर' कविराय, ज्वाब शाहन सों करिबो।
आछत सीताराम उमिरि अपनी भरि जियबो॥

महाकवि पद्माकर ।

[जन्म सं० १८३८ वि० । [कोई कोई सं० १८१० वि० इनका जन्म संवत् बतलाता है] ये बांदा के निवासी थे । ये रघुनाथराव पेशवा, ग्वालियर-महाराज और जयपुराधीश के यहां रहे । इन्होंने जगद्विनोद, गङ्गालहरी, भाषा-हितोपदेश नामक काव्य बनाये । इनका अन्तिम समय गङ्गा-सेवन में व्यतीत हुआ ।]

गङ्गा-गौरव ।

कवित्त ।

कूरम पै कोल कोल हू पै सेस कुण्डली है,
कुण्डली पै फबी फैल सुफन हजार की ।
कहै 'पदमाकर' त्यों फन पै फबी है भूमि,
भूमि पै फबी है थिति रजत पहार की ॥
रजत पहार पर सम्भु सुरनायक हैं,
सम्भु पर जोति जटाजूट है अपार की ।
सम्भु जटाजूट पर चन्द की छुटी है छटा,
चन्द की छटान पै छटा है गङ्गधार की ॥

[२]

सुचिति गोविन्द ह्वै के सोवतो कहाँ धौं जाय,
जल जन्तु पाँति जरजैवे को अखिलती ।
कहै 'पदमाकर' सुजादा कहौं कौन अब,
जाती मरयादा ह्वै मही की अनमिलती ॥

जलथल अन्तरिच्छ पावत क्यों पापी मुक्ति ,
मुनिजन जापकन जौ न दुरि मिलती ।
सूखि जातो सिन्धु बड़वानल की झारन सों ,
जो न गङ्गधार ह्वै हजार धाय मिलतो ॥

[३]

पापिन की पाँति भाँति भाँति बिललाति परी ,
जम की जमाति हल कम्पति हिलति है ।
कहै 'पदमाकर' हमेस दिवि-बीथिन ,
बिवानन की रेलारेल ठेलन ठिलति है ॥
सुर धुनि रावरे उधारे जगजीवन की ,
छिन छिन सेनी इन्द्र लोकहिं मिलति है ।
आसन अरघ्र देत देति निसिबासर ,
बिचारे पाकसासन कों सासन मिलति है ॥

[४]

गङ्गा जू तिहारे तीर आछी भाँति 'पदमाकर' ,
देखी एक पातकी की अद्भुत मुकति है ।
आय के गोविन्द वाहि धरि के गरुड़ जी पै ,
आपनेई लोक जाइबे की कीनी मति है ॥
जौलों चलिबे में भयो गाफिल गोविन्द ,
तौ लौं चोरि चतुरानन चलाई हँसगति है ।
जौ लौं चतुरानन चितैबे चहुँ ओर लाग्यो ,
तौ लौं वृख लादि कै पधार्यौ वृखपति है ॥

[५]

कलित कपूर में न कीरत कुमोदनी में,
कुन्द में न कास में कपास में न कन्द में ।
कहै 'पद्माकर' न हँस में न हास हूँ में,
हिम में न हेरि हारी हीरन के वृन्द में ॥
जेतो छबि गङ्ग की तरङ्गन में ताकियत,
तेती छबि छीर में न छीरधि के छन्द में ।
चैत में न चैतचाँदनी हूँ में चमेलिन में,
चन्दन में न है न चन्दचूड़ में न चन्द में ॥

रीवां नरेश श्रीमान् रघुराजसिंह जू देव।

[जन्म सं० १८८० वि०, मृत्यु १९३६ वि० । ये रीवांनरेश विश्वनाथसिंह जू देव के पुत्र थे । ये बड़े वीर और भाषा के विद्वान् थे । इन्होंने रुक्मिणी-परिणय, विनयमाल, आनन्दाम्बुनिधि, रामरसिकावली, भक्ति विलास आदि १५ काव्य बनाये हैं। गदर के समय आपने बड़ी वीरता से मैहर को बागियों से छुड़ाया । इतना ही नहीं वरन् आप बड़े वीर, प्रजाप्रिय और राजनीति-कुशल राजा थे ।]

भीष्म-युद्ध ।

[१]

जो मैं सुरसरि सुवन कहाऊँ,
तो प्रण मध्य सभा अस गाऊँ।
कौरव पाण्डव बीच दुहूँ दल हरिपूजन अस ठाऊँ॥
सोनित कन नहवाय नाथ को रणरज बसन उढ़ाऊँ।
पाण्डव सैन्य गारि गोबिन्द अँग चन्दन कोप चढ़ाऊँ॥
बिबिधि बरन की बिपुल बिकासित बिसिख माल पहिराऊँ।
सन्मुख सत्रु सँहारि सहस्रन कीरति सुरभि सुघाऊँ॥
तबहिं त्रिबिक्रम को तुरन्त तहँ बिक्रम दीप दिखाऊँ।
पारथ-सखा समीप जाय कै प्राण निवेद लगाऊँ॥
सकल जगत तें खैंचि प्रेम की बीरी आज खबाऊँ।
बिजय-बान चलवाय समर महँ जै दच्छिना देवाऊँ॥
रथ सों रथ मिलाइ माधव को धुज चामर हि चलाऊँ।
नख सिख निरखत रूप अनूपम नैन निरञ्जन लाऊँ॥

बार बार हनि धनुष प्रत्यञ्चा धनुषहिं बाज बजाऊँ ।
रथ मण्डल करि दे परिदच्छिना, उर आनँद उपजाऊँ ॥
यदुबर कर सों आजु अर्धसि मैं, चक्रप्रसादहिं पाऊँ ।
अर्जुन सर पञ्जर जञ्जर ह्वै गिरि सन्मुख सिर नाऊँ ॥
यहि बिधि रण प्रभु को करि पूजन, त्रिभुवन में यश छाऊँ ।
'श्रीरघुराज' कृपा हरि की लहि बरबस सुरपुर जाऊँ ॥

[२]

कुरुपति ! हमहुँ सुन्यो अस कान,
यदुपति तुम सों अस प्रण कीन्ह्यौ, हम न धरब धनुबान ।
ताते मैं गुहराय कहत हौं, ऐसे बचन प्रमान ॥
हरि को आयुध अवसि धरै हौं, ठानि घोर घमसान ।
'श्रीरघुराज' सदा दासन को राखत आये मान ॥
मेरी बार बिरद बिसरैहैं, कैसे कृपानिधान ?

[३]

कुरुपति ! इतनो मोहि प्रिय लागै,
जो नहिं मानी सीख हमारी, ताको दुख नहिं जागै ।
समर मरन पुनि यदुपति सन्मुख, मिलत भये बड़ भागै ।
ऐसेहु पै जो रन तजि भागै, तातें कोउ न अभागै ॥
कोटिन जनम योगि जेहि ध्यावत करिकै योग बिरागै ।
सो रथ चढ़ि 'रघुराज' कसागहि धैहैं आँखिन आगै ॥

[४]

चलु चलु अब न करहु नृप ! देरी,
बहुत दिनन की हग अभिलाषा आज पूजि है मेरी ।
पीतबसन बनमाल बिराजत, मुकुट मयूष घनेरी ॥

यक करताजन बाग एक कर अर्जुन बाजिन केरी ।
चहुँ कित चपल चलावत स्यन्दन इमि यदुनन्दन हेरी ॥
'श्रीरघुराज' आज धनि ह्वै हौं धुनि धुनि बानन ढेरी ॥

[५]

सारथि ! अस अवसर नहिं पै हौ ,
दान मान मम कृत उपकारहि आजु उऋन ह्वै जै हौ ।
जो अति चपल चलाइ तुरङ्गन हरि समीप पहुँचै हौ ॥
तो अपनो अरु हमरो जग में अति अनुपम यस छै हौ ।
एक ओर यदुबीर बिराजत एक ओर तुम ठै हौ ॥
यहि सुख ते नहिं और अधिक सुख अब न जगत जन ह्वै हौ ।
यह साँवरी माधुरी मूरति देखत जो मर जै हौ ॥
तौ 'रघुराज' अलभ जोगिन जो सो बिकुण्ठ पद पै हौ ॥

[६]

सारथि ! आवत पाण्डु-कुमार ,
तुरँग बाग धरि आगे बैठ्यो जेहि बसुदेव-कुमार ।
छन छन रन में रथहि धबावत धुरति धूरि की धार ॥
पारथ हनत हजारन सायक कटत बीर बल बार ।
बिन सान्तनु-सुत को अब जै है सम्मुख भट यहि बार ॥
को रिझाइ है बिजय सखा कों हनि सर समर मँझार ।
लैचल लैचल तबल तुरङ्गन, कर नहिं कछु खम्भार ॥
' श्रीरघुराज ' स्यामसुन्दर पद मोकों आजु अधार ॥

[" रघुराज-बिलास " से]

श्रीमान् राजा लक्ष्मणसिंह।

[जन्म सं० १८८२ वि०-मृ० १९५१ वि०,। ये आगरे के निवासी क्षत्रिय थे। इन्होंने भाषा में मेघदूत, शकुन्तला और रघुवंश का अनुवाद किया था। इन्होंने दण्डसंग्रह भी बनाया है॥]

अलका-वर्णन।

[१]

होड़ वहाँ करि हैं बहुभाँतिन,
तो सँग मन्दिर नीकी छटा के।
तू चपला सुरचाप लिये,
उनमें अबला अरु चित्र अटा के॥
तो उर नीर वहाँ भुवि हीर,
मृदङ्ग उतै इत शोर घटा के।
तुङ्ग है तू तौ शिखा उनकी,
परसिद्ध हैं नाम सों अभ्रचटा के॥

[२]

तिय हाथन केलिकमोद वहाँ,
अलकावली सोहति कुन्दकली।
रज लोध्रप्रसून परै मुख पै,
दुति दीखत है पियराई भली॥
कुरवा नये चोटिन माँहिं लसैं,
अरु कान शिरीषन की अवली।
तुहि देखत फूल कदम्ब खिलैं,
सोई माँग धरैं सुखमा है भली॥

[३]

स्वेत बिलौर के भौनन में,
वहाँ फूल से तारकाबिम्ब परैं नित ।
तो मधुरी धुनि के अनुमान,
मृदङ्ग बजैं सुरमन्द भरैं नित ॥
कामिनि भामिनी सङ्ग लिये,
बहु भाँतिन जच्छ बिहार करैं नित ।
पीवत कल्पप्रसूत मधू,
सिगरे रति रंग प्रसंग सरैं नित ॥

[४]

अलकावलि तें गिरि फूल परे,
गति आतुर माँहि मन्दारन के ।
अरु कानन तें खिसले अवतंस,
बने कलधौत कल्हारन के ॥
कुच उन्नति के गुन तें मुकता,
बिखरे गुन टूटत हारन के ।
इनतें वहँ भोरहि जानि परैं,
मग राति भये अभिसारन के ॥

[५]

वहाँ प्रीतम ढीठ भए रस के,
बस हाथ चलावत जोरी करैं ।
गिर जच्छ बधून के बस्त्र कछू,
खिछ छोर छुरान की डोरी परैं ॥

दुति निर्मल रत्न प्रदीप धरे ,
सोइ लोइसी आँखिन ओरी जरैं ।
तिन ऊपर कुंकुम फेंकि वृथा ,
गड़ि लाजन भोरी सीं गोरी मरैं ॥

[६]

वहाँ पौन के पेरे कितेकहु बादर ,
तो उनहारि के आवत हैं ।
जल बुन्दन की बरषा करि कैं ,
अँगनान के चित्र मिटावत हैं ॥
भयभीति से फेरि झरोखन ह्वै ,
सिमिटे तन बाहर धावत हैं ,
कढ़ि जान कों बेग धुआँ बनि कै ,
बड़े चातुर बेहु कहावत हैं ॥

[७]

घनाक्षरी ।

मीन किन्नरेश रहैं नित्त ही महेश यहाँ ,
जानि यों रतेश चित्त शङ्का बिसरावै ना ।
ताहि डर बार बार अलका पुरी के माँहि ,
भृङ्ग की प्रतिञ्चा खैंचि चाप पै चढ़ावै ना ॥
नागरि तियान नैन विभ्रम प्रताप पाय ,
कारज में वाके तऊ हानि हौन पावै ना ।
छूटत कटाक्ष बाँकी भौंह की कमानन तैं ,
कामीरूप बेझो बिना बेध्यौ रहि जावैं ना ॥

['मेघदूत' से

महाकवि भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ।

[ज० सं० १९१९ वि०, मृ० सं० १९५४ वि० । ये वैश्य थे और इनके पिता प्रसिद्ध कवि बाबू गोपालचन्द्र उपनाम गिरधरदास कवि थे । इन्हों ने कर्पूरमञ्जरी, चन्द्रावली, सत्यहरिश्चन्द्र, नीलदेवी आदि नाटक, तदीय-सर्वस्व और काश्मीरकुसुम आदि ग्रन्थों की रचना की । ये गद्य पद्य दोनों के लेखक थे । इन्होंने कविवचन-सुधा हरिश्चन्द्र-मेगजीन तथा हरिश्चन्द्र-चन्द्रिका ये तीन मासिकपत्र निकाले । ये अनन्य वैष्णव थे । सारे भारतवर्ष ने मिल कर इन्हें 'भारतेन्दु' की उपाधि दी थी ।]

यमुना-छवि ।

[१]

तरनि तनूजा तट तमाल तरुवर बहु छाये ।
झुके कूल सों जल परसन हित मनहुँ सुहाये ॥
किधौं मुकुर में लखत उझकि सब निज निज सोभा ।
कै प्रनवत जल जानि परम पावन फल लोभा ॥
मनु आतप बारन तीर कों सिमिटि सबै छाये रहत ।
कै हरि सेवा हित नै रहे निरखि नैन मन सुख लहत ॥

[२]

कहूँ तीर पर कमल अमल सोभित बहु भाँतिन ।
कहुँ सैवालिन मध्य कुमुदिनी लगि रही पाँतिन ॥
मनु दृग धारि अनेक जमुन निरखत बृज सोभा ।
कै उमगे पिय प्रिया प्रेम के अगनित गोभा ॥
कै करिकै बहु पीय कों टेरत निज ढिग सोहई ।
कै पूजन के उपचार लै चलति मिलन मन मोहई ॥

[३]

कै पिय पद उपमान जानि यह निज उर धारत।
कै मुख करि बहु भृंगन मिस अस्तुति उच्चारत॥
कै वृज तियगन बदन कमल की झलकत झाईं।
कै वृज हरि पद परस हेत कमला बहु आईं॥
कै सात्विक अरु अनुराग दोउ वृज मण्डल बगरे फिरत।
कै जानि लच्छमी भौन एहि करि सतधा निज जल धरत॥

[४]

तिन पै जेहि छिन चन्द जोति राका निसि आवति।
जल में मिलि कै नभ अवनी लौं तान तनावति॥
होत मुकुरमय सबै तबै उज्जल इक ओभा।
तन मन नैन जुड़ात देखि सुन्दर सो सोभा॥
सो को कवि जो छबि कहि सकै ता छन जमुना नीर की।
मिलि अवनि और अम्बर रहित छबि इकसी नभ तीर की॥

[५]

परत चन्द प्रतिबिम्ब कहूँ जल मधि चमकायो।
लोल लहरि लहि नचत कबहुँ सोई मन भायो॥
मनु हरि दरसन हेत चन्द जल बसत सुहायो।
कै तरङ्ग कर मुकुर लिये सोभित छबि छायो॥
कै रास-रमन में हरि मुकुट आभाजल दिखरात है
कै जल उर हरि मूरति बसति ता प्रतिबिम्ब लखात है।

[६]

कबहुँ होत सत चन्द कबहुँ प्रगटत दुरि भाजत।
पवन गवन बस बिम्ब रूप जल में बहु साजत॥
मनु ससि भरि अनुराग जमुन जल लोटत डोलै।
कै तरङ्ग की डोर हिंडोरन करत कलोलै॥
कै बाल गुडी नभ में उड़ी सोहत इत उत धावती।
कै अवगाहत डोलत कोऊ बृजरमनी जल आवती॥

[७]

मनु जुग पच्छ प्रतच्छ होत मिटि जात जमुन जल।
कै तारागन ठगन लुकत प्रकटत ससि अविकल॥
कै कालिन्दी नीर तरङ्ग जितो उपजावत।
तितनो ही धरि रूप मिलन हित तासों धावत॥
कै बहुत रजत चकई चलत कै फुहार जल उच्छरत।
कै निसि-पति मल्ल अनेक बिधि उठि बैठत कसरत करत॥

[८]

कूजत कहुँ कलहँस कहूँ मज्जत पारावत।
कहुँ कारण्डव उड़त कहूँ जलकुक्कुट धावत॥
चक्रवाक कहुँ बसत कहूँ बक ध्यान लगावत।
सुक पिक जल कहुँ पियत कहूँ भ्रमरावलि गावत॥
कहुँ तट पै नाचत मोर बहु रोर बिबिधि पच्छी करत।
जलपान न्हान करि सुख भरे तट सोभा सब जिय धरत॥

[६]

कहुँ बालुका बिमल सकल कोमल बहु छाई ।
उज्जल झलकत रजत सिढ़ी मनु सरस सुहाई ॥
पिय के आवन हेत पाँवड़े मनहुँ बिछाये ।
रत्नरासि करि चूर कूल में मनु बगराये ॥
मनु मुक्त माँग सोभित भरी, स्यामनीर चिकुरन परसि ।
सतगुन छायो कै तीर में, बृज-निवास लखि हिय हरसि ॥

[" चन्द्रावली " से]

[२]

प्रिंस आव वेल्स का

[स्वागत ।]

स्वागत स्वागत धन्य तुम भावी राजधिराज !
भई सनाथा भूमि यह परसि चरन तुव आज ॥
राज-कुँअर आओ इतै दरसाओ मुख-चन्द ।
बरसाओ हम पै सुधा बाढ़यौ परम अनन्द ॥

नैन बिछाये आप हित आवहु या मग होय ।
कमल पाँवड़े ये किये अति कोमल मग जोय ॥
साँचहुँ भारत में बढ़यो अचरज सहित अनन्द ।
निरखत पच्छिम सों उदित आज अपूरब चन्द ॥

दुष्ट नृपति बल दल दली दीना भारत भूमि ।
लहि है आज अनन्द अति तुव पद-पङ्कज चूमि ॥
विकसित कीरति कैरवी रिपु बिरही अति छीन ।
उड़गन सम नृप और सब लखियत तेज-बिहीन ॥

स्रवत सुधा सम बचन मधु पोखत औषधिराज।
त्रासत चोर कुमित्र खल नन्दत प्रजा समाज॥
चित चकोर हरखित भए सेवक कुमुद अनन्द।
मिट्यौ दीनता तम सबै लखि भूपति मुखचन्द॥

मन मयूर हरखित भये गये दुरित दव दूरि।
राजकुँअर नव घन सरस भारत जीवन मूरि॥
हृदय कमल प्रफुलित भये दुरे दुखद खल चोर।
पसर्यौ तेज जहान रबि भूपति आगम भोर॥

नन्दन पति प्यारी सची दण्ड बज्र गज जान।
मंत्रीबर सुर सह लसत नृपसुत इन्द्र समान॥
भए लहलहे नर सबै उलह्यौ प्रजा समाज।
बन्दी पिक गावत सुजस राजकुँअर रितुराज॥

बिदलित रिपु गज सीस नित नख बल बुद्धि प्रभाव।
जन बनपति सम अति प्रबल हरि भावी नर राव॥
मेला हू सों बढ़ि सबै सज्यौ नगर को साज।
बुढ़वा-मङ्गल तुच्छ कह लखि नवमङ्गल आज॥

ललित अकासी धुज सजे परकासी आनन्द।
राकासी कासी पुरी लखि भूपति मुखचन्द॥
नौबत धुनि मञ्जीर सजि अञ्चल धुज फहराय।
कासी तुम्हहिं मिनार तिस टेरति हाथ उठाय॥

मरबटसपिए बसन धुज मौरी तारे नलाय।
दुलहीसी कासी पुरी उलही नव बर पाय॥
जिमि रघुबर आए अवध जिमि रजनी लहि चन्द।
तिमि आगमन कुमार के कासी लह्यौ अनन्द॥

मधुबन तजि फिर आय हरि ब्रज निवसे मनु आज ।
ऐसो अनुपम सुख लह्यो तुम कहँ निरखि समाज ॥

[षड्भिः कुलकम्]

जदपि न भोज न व्यास नहिं बालमीकि नहिं राम ।
शाक्यसिंह हरिचन्द बलि करन युधिष्ठिर श्याम ॥
जदपि न विक्रम अकबरहु कालिदास हू नाहिं ।
जदपि न सो बिद्यादि गुन भारतबासिन माहिं ॥

प्रतिष्ठान साकेत पुनि दिल्ली मगध कनौज ।
जदपि अबै उजरे परे नगर सबै बिन मौज ॥
जदपि खण्डहर सों भरी भारत भुवि अति दीन ।
खोइ रत्न सन्तान सब कृस-तन-हीन-मलीन ॥

तदपि तुमहिं लखिकै तुरत आनन्दित सब गात ।
प्रान लहैं तनसों अहो भारत-भूमि लिखात ॥
दाव जरे कहँ बारि जिमि, बिरही कहँ जिमि मीत ।
रोगि हि अंमृत पान जिमि, तिमि एहि तोहि लहि प्रीत ॥

घर घर में मनु सुत भयो, घर घर में मनु व्याह ।
घर घर बाढ़ी सम्पदा तुव आगम नर नाह ॥
जैसे आतप तपित कों छाया सुखद गुनात ।
जबनराज के अन्त तुव आगम तिमि दरसात ॥

मसजिद लखि बिसुनाथ ढिग परे हिए जो घाव ।
ता कहँ मरहम सरिस यह तुव दरसन नरराव ॥
कुँअर कहाँ हम लेहिं तोहि ठौर न कहूँ लखाय ।
दृग मग ह्वै हमरे हिए बैठहु प्रिय तुम आय ॥

कुँअर कहा आदर करै देहिं कहा उपहार।
तव मुख ससि आगे लगत तृन सम सब संसार॥
पै केवल अति सुद्ध जिय करि यह देहिं असीस-
"सानुज माता सहित तुम जीओ कोटि बरीस॥

जब लौं बानी वेद की जब लौं जग को जाल।
जब लौं नभ ससि सूर अरु तारा गन की माल॥
जब लौं गङ्गा जमुन जल जब लौं भरथो नदीस।
जब लौं कबि कबिता सुथिर जब लौं भुवि अहिसीस॥

जब लौं सुमन सुबास पर मत्त भँवर संचार।
जब लौं कामिनि नयन पर होहिं रसिक बलिहार॥
जब लौं तत्व सबै मिलै गठै सबै परमानु।
जब लौं ईश्वर अस्तिता तब लौं तुम नर-भानु॥

जिऔ अचल लहि राज-सुख नीरज बिना बिवाद।
उदय अस्त लौं मेदिनी पालहु लहि सुखस्वाद॥
पहरू कोउ न लखि परै होय अदालत बन्द।
ऐसो निरुपद्रव करौ राजकुँअर सुख कन्द॥

लोहा गृह के काम में कलह दम्पती माहिं।
बाद बुधन ही में सदा तुव राजत रहि जाहिं॥
जाति एक सब बरन की जदपि बिबिध ब्यौहार।
तुमरे राजत लखि परै नेही सब संसार॥

रसना इक आसा अमित, कहँ लौं देहिं असीस।
रहो सदा तुम छत्र से होइ हमारे सीस॥
भ्रात मात सह सुतन जुत प्रिया सहित जुबराज।
जिओ जिओ जुग जुग जिओ भोगो सब सुख साज॥"

दाशवतार ।

[गीत गोविन्दानन्द से]

प्रलय भयानक जल निधि जल धँसि प्रभु तुम वेद उधारे ।
करि पतवार पुच्छ निज बिहरे मीन सरीरहि धारे ॥
जय जय जय जगदीस हरे !

कठिन पीठ मन्दर मन्थन किन छित भर तिल सम राजै ।
गिरि घूमनि सहरानि नींद बस कमठ रूप अति छाजै ॥
जय जय जय जगदीस हरे !

कनक नयन बध रुधिर छींट मिलि कनक बरन छबि छायो ।
रद आगे धर ससि कलङ्क मनु रूप बराह सुहायो ॥
जय जय जय जगदीस हरे !

कर-नख केतकि पत्र अग्नि अलि कनक-कसिपु तन फार्यौ ।
खम्भ फारि निज जन रच्छन हित हरि नरहरि बपु धार्यौ ॥
जय जय जय जगदीस हरे !

अद्भुत वामन बनि बलि छलि कै तीन पैंड़ जग नाप्यौ ।
दरसन मज्जन पान समन अघ निज नख जल थिर थाप्यौ ॥
जय जय जय जगदीस हरे !

अभिमानी छत्री गन बध तिन रुधिर सींच धर सारी ।
इकइस बार निछत्र करी भुवि हरि भृगुपति बपु धारी ॥
जय जय जय जगदीस हरे !

दस दिस दस-सिर मौलि दियो बलि सब सुर गन भय हारे
सिय लछमन सह सोभित सुन्दर राम रूप हरि धारे

जय जय जय जगदीस हरे !

सुन्दर गौर सरीर नीलपट ससि में घन लपटायो।
करसन कर हल सों जमुनाजल हलधर रूप सुहायो ॥

जय जय जय जगदीस हरे !

अति करुना करि दीन पसुन पै निन्दे मखकर वेदा।
कलिजुग धरम कहे हरि ह्वै के बुद्ध रूप हर खेदा ॥

जय जय जय जगदीस हरे !

म्लेच्छ बधन हित कठिन धार तरवार धारि कर भारी।
नासे जवन सत्ययुग थाप्यो कल्कि रूप हरि धारी ॥

जय जय जय जगदीस हरे !

नँदनन्दन जगबन्दन दस बपु धरि लीला बिस्तारी।
गायी कवि 'जयदेव' सोई 'हरिचन्द' भक्त भय हारी ॥

जय जय जय जगदीस हरे !

["हरिश्चन्द्र-चन्द्रिका" से]

श्रीमान् पण्डित प्रताप नारायण जी मिश्र ।

[जन्म सं० १९१३ वि०, मृत्यु १९५१ वि० । ये कानपुर-निवासी और कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे । इन्होंने 'ब्राह्मण' नाम का एक मासिक-पत्र निकाला था । ये कुछ दिन 'हिन्दोस्थान' के भी सम्पादक रहे । अभिज्ञान-शाकुन्तल, ब्राडला-स्वागत आदि काव्य आपने बनाये हैं । इसके सिवाय आपने १३ पुस्तकों का अनुवाद भी किया और २० पुस्तकें लिखीं ।]

[१]

बाल-संकल्प ।

[१]

कबहूँ न छल परपञ्च चोरी माँहि चित्त लगाय हौं,
करि हौं न पर अपवाद दीन दुखीन को न सताय हौं ।
काहू समय कटु-बचन मिथ्या बैन भूलि न भाखि हौं,
सब कष्ट सहि सब काल पर उपकार कर प्रन राखि हौं ॥

[२]

नित नम्र, सुबुध सुशील सुस्थिर चित्त रहिबो चाहि हौं,
पितु मातु गुरु जन चरन सेवा प्रेम नेम निबाहि हौं ।
निज भ्रात भगिनी मित्रगन सन नेह नातो मानि हौं,
तिन कहँ सुखित करि आपुको सुख सिन्धुमज्जित जानि हौं॥

[३]

अन्धे अपङ्ग कुरोगि लोगन पै दया उर धारि हौं,
लखि हौं कुमारग जात काहुहि तौ अवश्य निवारि हौं ।

मिलिकै सुबोध सिसून सों रहि हौं सिखत सद्गुण सदा ,
सुनि हौं जु शुभ उपदेश ताहि बिसारि हौं न कहूँ कदा ॥

[४]

रखि हौं अमल आचरण अपनो साँच बाचा बोलि हौं ,
पथ में सनातन धर्म के नित ही अनन्दित डोलि हौं ।
सब भाँति भारत-भक्ति रस महँ मग्न ह्वै सुख पाय हौं ,
आनन्द सों ऊँचे सुरन भारत सुकीरत गाय हौं ॥

[५]

उत्पत्ति भारत में भई, नित भारत हि में रहहुँगो ।
सब भारत हिं के धर्म कर्म बिचार दृढ़ करि गहहुँगो ॥

[२]

प्रभात ।

[प्रभाती]

कैसी कमनीय है प्रभा प्रभात काल की ।
दिनकर करि इत उजास, इत लहि ससि तेज नास ,
कै रहे सदा प्रकास मानौ जग-जाल की ।
कुमुदिनि सोभा बिहीन, बिरहिन इव दुखित दीन ,
लागति नैनन मलीन, देखत दिसि ताल की ॥
दरभ की कुटीन त्यागि, उठहि मोर जागि जागि ,
बेदिन ढिग लागि लागि पैंडनि मृग माल की ।
इहि छिन सब साधु सन्त, प्रेम-पूरि ह्वै इकन्त
सुमिरत महिमा अनन्त, त्रिभवन महिपाल की ॥

हिन्दी-पद्य-संग्रह ।

दोहा ।

बदरि बिरछ के पात पै, ओस-बुन्द छबि छाय ।
कैसी लगत सुहावनी, अरुन उदय दुति पाय ॥

सवैया ।

सोइ निसापति जो गिरि मेरु पै ,
पाँव धरे बिचरै निस माहीं ।
त्यौं तम तो महि नासत जासु ,
मरीचिका श्रीहरि-धाम लौं जाहीं ॥
तेज गँवाय गिरै नभ तै सोउ ,
भोर समै दबि कै रबि पाहीं ।
या जग माहिं बड़ेहू बड़ेन की ,
दीसत है थिर सम्पति नाहीं ॥

साहित्याचार्य पण्डित अम्बिका-दत्त जी व्यास ।

[जन्म सं० १९१५ वि०, मृत्यु सं० १९५६ वि० । ये श्री वैष्णव मतावलम्बी थे । ये संस्कृत के उद्भट विद्वान् थे । ये जैसे विद्वान् थे वैसे ही वक्ता भी थे । लेखक भी आप बहुत ऊँचे दर्जे के थे । आप 'पीयूष प्रवाह' नाम का मासिक पत्र निकालते और उसका सम्पादन करते थे । आपने संस्कृत और हिन्दी में ७८ ग्रन्थ बनाये हैं जो भाषा के रत्न हैं । आप चौबीस मिनिट में सौ श्लोक बना लेते थे । आपको 'साहित्याचार्य' 'भारतरत्न' 'घटिकाशतक' 'शतावधानी' आदि पदवियाँ और पदक मिले थे। संस्कृत और हिन्दी छोड़ कर आप बङ्गला, मरहठी, गुजराती, अँग्रेजी आदि भाषाएँ भी जानते थे।]

[१]

काशी-वर्णन ।

[१]

बरनि सकै को विश्वनाथ की पुरी सुहावन ।
देवन चित तरसावन मुनि जन हिय हरखावन ॥
दूरहि तें दरसात बिलच्छन वाकी सोभा ।
चलत चलत लखि ठठकि जात पथिक हु मन लोभा ॥

[२]

सीतल लखि कै गङ्गातट हर गिरि जनु सोयो ।
मनहुँ मेघ को वृन्द भूमितल आय समोयो ॥
अहै मनहुँ साकेत पुरी जल थल सों ऊँची ।
कैधौं है बैकुण्ठ पुरी सुखदानि समूची ॥

[३]

ऊँचे ऊँचे कलस दूर ही सों अति चमकत ।
चन्द सूर की किरन परैं दूनी द्युति दमकत ॥
अँमृत घट सिर लिये मनहु गृह देवी ठाढ़ी ।
जात्रीगन को मङ्गल मय छबि दीखत बाढ़ी ॥

[४]

मेघन की लहि रगर मन हुँ दमकत अति दूने ।
चमचमात से कलस बिज्जु के मन हुँ नमूने ॥
चिदानन्द की भरी पोटरी से छबि छाजत ।
मन हुँ मुक्ति के बसीकरन टोटका बिराजत ॥

[५]

तिनके बिचबिच लसत धुजा फरफर फहराती ।
पापिन के जनु पापन को फटकारि उड़ाती ॥
दूर दूर के मनहुँ बटोहिन निकट बुलाती ।
जमदूतन को धक धकाय दम दम दमकाती ॥

[६]

मूर्तिमती जनु कीर्त्ति कासिका की लहराती ।
अति कराल कलिकाल बिजय बीची छहराती ॥
बिधि की रेख मिटावति सी उज्वल दरसाती ।
लसहि पताका रङ्ग बिरङ्गी हिय सरसाती ॥

[७]

मधुर दुन्दुभी सङ्ग मधुर बाजत सहनाई ।
मधुर मधुर ही राग मधुरता हिय बगराई ॥
आँखिन में भरि जात मधुर वह रूप लुनाई ।
धन्य मधुरता जहाँ सम्भु हू गये लुभाई ॥

[८

धीमी धीमी धार सुरधुनी ता ढिग सोहत ।
पुलकि पसीजत मुनिजन हू जाकी छबि जोहत ॥
जाकी सोभा देखि चिदानँद हिय आरोहत ।
देव देव के सहस नयन हू इहि लखि मोहत ॥

[९]

देवधुनी हू कासी ढिग लहि आनँद सोवति ।
परम प्रेम जनु पागि कासिका के पग धोवति ॥
मुक्ति लता के अंकुर कौं सींचति सो धावति ।
लहरन कौं लहराइ प्रेम अतिसै सरसावति ॥

[१०]

चलत हजारन कोस जासु ढिग जात्री आवैं ।
थके पसीना भरे जाहि लखि हीय जुड़ावैं ॥
जनम जनम के पातक हू जेहि देखि परावैं ।
जा गङ्गा के नाम अधम केते तरि जावैं ॥

[११]

सेतुबन्ध रामेश्वर कौं जा को जल भावत ।
वैद्यनाथ हू मत्त होइ जिहिं तोय नहावत ॥
कलिजुग में जो सरन एक ही मात्र दिखावत ।
रजहू माथे मलै जोई सुरधाम पठावत ॥

[१२]

सोऊ गङ्गा जाके संनिधि आइ रही हैं ।
दूध धार सों उमगि उमगि जनु धाइ रही हैं ॥
दरसन ही से पातक पुञ्ज बहाइ रही हैं ।
देवगनन के नयनन हूँ तरसाइ रही हैं ॥

[१३]

प्रात समय गङ्गा की सोभा नहि कहि जाती ।
देखत ही में उमगि प्रेम भरि आवत छाती ॥
ब बं हर हर करत भीड़ आती अरु जाती ।
नौका केती चलत मन्द लहरनि लहराती ॥

[१४]

केते मज्जन करत मनहुँ गङ्ग हिं आलिङ्गत ।
केते इत उत मुदित होय जल ही में रिङ्गत ॥
किते नीर सिर धारि सम्भु को सो सुख पावत ।
किते उछारत जल जनु पुनि हरिपद सरसावत ॥

[१५]

चिरुवन लै लै नीर एक दूजे पै छिरकत ।
कर पिचकारी छोड़ि अनन्दित ह्वै कोऊ थिरकत ॥
केते बालक कूदि कूदि बहु बिधि तैं पौरत ।
खलभलात जल कोऊ तहाँ जल ही जल दौरत ॥

[१६]

कुस जव तिल लै पितरन कों कोऊ ठानत तर्पन ।
अंजुरिन भरि जल फूल करत कोउ रबि को अर्पन ॥

कोऊ पौंछत गात वेद के मंत्रन बोलत।
सहसनाम कोउ पढ़त गाँठ निज हिय की खोलत॥

[१७]

लम्बे तखता बिछे बारि ऊपर अति सोहत।
तिनपै बैठे बिप्र घनानँद आनँद दोहत॥
कोउ करि प्रानायाम सुषुम्ना पथ आरोहत।
कोउ त्राटकी करत चन्द्र के रंध्र हिं जोहत॥

[१८]

संन्यासी तहँ कोउ नहाइ कौपीन निचोरत।
कोऊ बारहि बार धोय जल तूम्बा बोरत॥
सीढ़ी पै कोउ बैठि सुभग छबि ठाठ निहारत।
कोऊ लखि लखि ता सोभा को तन मन वारत॥

[१९]

कोऊ द्वैत मत तर्क लेइ दूजे पै बोलत।
कोऊ लै मायाबाद तासु के नैनन खोलत॥
कोऊ लै शुद्धाद्वैत ताहि कछु और सिखावत।
कोऊ विशिष्टाद्वैत भाषि तेहि हीय लुभावत॥

[२०]

कोऊ सिव को बड़ो भाषि आनँद रस चाखत।
पुरुषोत्तम को बड़ो कोऊ त्रिभुवन में भाषत॥
कोऊ कृष्ण हिं को चोरकहत राम हिं पै मातत।
कोऊ राम हिं तपसी कहि नदनन्द हिं रातत॥

[२१]

कोऊ भाषत एक हि है पुरुषोत्तम पूरो ।
सोई सिव, अरु राम हु सोई, गननाथ हु रूरो ॥
माखन मिसरी खात सोई पुनि खात धतूरो ।
एक सोई है ब्रह्म होउ तासों मत दूरो ॥

[२२]

काऊ के सिर दीप सिखा सो टीका राजै ।
काऊ के सिर रामानन्दी तिलक बिराजै ॥
कोऊ छापा छापि पीत बिन्दुरी मधि दीन्ही ।
कोऊ लेइ बिभूति तीन सुठि रेखा कीन्ही ॥

[२३]

कोऊ निज बालकन भाल पै खौर सँवारत ।
कोऊ दच्छिना देत विप्र कों जनम सुधारत ॥
कहुँ घाटिया लटपट के सङ्कल्प उचारत ।
लै कर झारी करि प्रनाम कोऊ गेह पधारत ॥

[२४]

कोऊ घाट रमनीगन ही की भीर लगी है ।
किङ्किन झूमकि पायजेब की झमक जगी है ॥
कोउ नहात कोउ बाहर निकरत कोउ पट पहरत ।
कोऊ भींजे बसन जपत माला अरु थहरत ॥

[२५]

कोउ दूजी सों कहत आज क्यों देरी कीनी ।
कोउ कहत इक दीखत है यह नारि नवीनी ॥

कोऊ अङ्क उतारि घाट बालक बैठावति।
कोऊ पुनि निज छोरन के अँग मलि मलि नहवावति॥

[२६]

ठौर ठौर मन्दिर मन्दिर में कथा सुहाई।
नर नारिन की भीर तहाँ चहुँ दिसि में छाई॥
कहुँ मन्दिर में होत भजन आरति कहुँ,गाई।
कहुँ,जै जै धुनि सहित धमकि घण्टा घहराई॥

[२७]

नङ्गे पाँवन चलत कहूँ बाबू अरु राजा।
राजकुमार हु घुसत भीर में कहुँ तजि लाजा॥
कहुँ पूजा के थार हाथ लै चलत तियागन।
हरि गनेस सिव दरसन हित माते सब के मन॥

[२८]

कोऊ महल्ला घोंषि रहे दुज बटुक जटा घन।
'टिड्ढाणञ' की चटनी कहुँ कहुँ करत छात्रगन॥
छेद छेद अरु छिन्न छिन्न कोउ संस्कृत बोलत।
कोउ गीतामृत चाखि हृदय की गाँठिन खोलत॥

[२९]

आवत कहुँ कोऊ पण्डित कर में पेड़ा लीने।
ढीली धोती पाग ओढ़ना ढीलो कीन्हे॥
सूँघत सुघनी कोऊ छींकि औरन हुँ छिंकावत।
कोऊ व्यवस्था,सभा हेतु निज डौल लगावत॥

[३०]

धंन्य कासिका पुरी अहै को बरनि सकै इहिं ।
राखत निज तिरसूल अग्र पै महादेव जिहिं ॥
जाको दरसन किये पाप दूरहि सों भागत ।
पापिन हूँ को हीय जहाँ हरि जस अनुरागत ॥

[३१]

संसारिन कों विषय भोग की भरी लखाती ।
विद्या की जनु जन्म भूमि बुधगन हिं दिखाती ॥
धनिकन कों धनमयी सिल्पि कों सिल्प सुहाती ।
मुनि जन कों इक मुक्ति दानि सुन्दर दरसाती ॥

[२]

मोर ।

कहो मोर तुम कहा अहो अति आनँद माते ।
नाचत छुन छुन उमगि उमगि अति हिय हरखाते ॥
तनि तनि तानत पुच्छ चन्द्रिकनि चक्र सुहाते ।
तकि तकि मेघन ओर कुहूकन कूक सुनाते ॥
देखत ही घनस्याम परे घनस्याम कहा मन ।
बृन्दाबन सुधि परत कहा तुव पुलकि उठ्यो तन ॥
ताही आनँद माति अहो नाचत का छुन छुन ।
प्रेमनयन सों जोहि रहे हौ फिर फिर उपबन ॥
रङ्ग रङ्ग सों रङ्गी सीस तुव कलँगी राजै ।
नीलकण्ठ पुनि नील कण्ठ तुअ रुचिर बिराजै ॥
ताँबे के रङ्ग रँगी रेख डैनन पै छाजै ।
चन्द्रकचारु समूहन सों पुच्छ हु पुनि भ्राजै ॥

सब बिधि सोभाधाम अहो जन-नैनन प्यारे ।
गिरिवर बन उपबन के भूषन सुभग सँवारे ॥
तोऊ क्यों धौं रूपरहित पग अहैं तिहारे ।
भोजन क्यों धौं कियो हाय विधि ने अहि कारे ॥

[३]

शुक ।

हरौ हरौ तू अहै सबन के नैनन भायो ।
हरौ दुसाला ओढ़ि मन हुँ अतिसै हरखायो ॥
लाल बिम्बसी चोंच हु सों अति लगत सुहायो ।
मानहुँ बीरी चाबि चाबि कै बदन रचायो ॥
इन्द्र-धनुष-रङ्ग धार कण्ठ में तेरे सोहति ।
बिबिधि नगन को लरी सरिस सब के मन मोहति ॥
धन्य धन्य तू अहै तोहि जगदीस सँवास्यो ।
सुन्दर सुर सों सरस तुह्व हरि नाम उचास्यो ॥
मधुर सुरन सुनि तोहि नरन बन सों गहि पकस्यो ।
पञ्जर कारावास माँहि रखि कै पुनि अकस्यो ॥
गुन हु भये तुश्र दोष हाय बिधि कैसी कीनी ।
तोहि कैद करि काकन कों सुख सम्पति दीनी ॥
तऊ कीर तू धन्य अहै हरि नाम उचारत ।
रामकृष्ण पद टेरि टेरि कै पाप पखारत ॥
तेरी बोली सुनि सुनि केते जनम सुधारत ।
तोहि पढ़ावत केते नित्त अमङ्गल आरत ॥

नैन मून्दि कै सोचत है का सुख उपवन के ।
गये सो कुञ्ज बिहार हाय सरसावन मन के ॥
वे फूली तरु-डार बयार बहारन पूरी ।
वे फल भारन झुकी झूमती साखा रूरी ॥
उनसों अब नहिं भेंट कीर मति जिय तरसावै ।
पञ्जर ही में बैठि क्यों न हरि-ध्यान लगावै ॥
होन हुती सो भई सुकवि तजि चिन्ता मन की ।
स्याम हिये धरि छाँड़ि सबै आसा अब बन की ॥

[४]

मत्स्य ।

नीर तोहि निज हाथ में राखत है सब काल ।
निज रहिबे के थान में राखत तेरी चाल ॥
बधिकन के पुनि हाथ तें राखत तोइ छिपाइ ।
मरत मरत हु जो मिलै तो तोहि देत जिवाइ ॥
ताही के अवलम्ब तें चलत फिरत तू मीन ।
पीय पीय पुनि ताहि कों रहत सदा तू पीन ॥
तुहु धन्य है तासु को गुन बिसरावत नाहिं ।
तन में मन में नैन में तेरे सोइ सोहाहिं ॥
ताही की पुनि सरन में रहत सदा तू मीन ।
तेहि सूखत लखि होत है तूहु मन में दीन ॥
ताहि मलिन देखत जबै जर व्यापत तो देह ।
ताहि स्वच्छ पाये सु पुनि आनन्द होत अछेह ॥

ताकी सोभा करत तू भाँति भाँति गति लेइ ।
तासु सुअङ्ग तरङ्ग तू निज रङ्ग सों रङ्गि देइ ॥
फरकि फरकि निज पुच्छ सों मोतिन मन हु उछारि ।
निज अङ्ग चवँर ढुराइ जनु पूजत है तू वारि ॥
होत हि तासु बियोग तू तरफ तरफ अकुलाय ।
दूध दही राखेहु तोहि लागत जगत बलाय ॥
छनक और जो नहिं मिलै बाढ़त तो कहँ पीर ।
जगत सून्य सो लखत तू चाहत है इक नीर ॥
होत मूरछित छनक में होस सबै तुअ जात ।
जल ही में पुनि लीन ज्यों तेरो जीव लखात ॥
जौ न मिलै छन और तो प्रान देत छन माहिं ।
धन्य मीन तो से कहूँ नाहिं कृतज्ञ लखाहिं ॥

[" पीयूष-प्रवाह " से ।]

पण्डित श्रीधर पाठक ।

[१]

श्रीनगर-वर्णन ।

धन्य नगर श्रीनगर वितस्ता कूलन सोहै ।
पुलिन भौन प्रतिबिम्ब सलिल शोभा मन मोहै ॥
लसत "कदल" पुल सप्त चपल नौकागन डोलैं ।
रूपरासि नर नारि वारि बिच करत कलोलैं ॥
"शेरगढ़ी" नृपभौन सरित तट सोहत सुन्दर ।
बिज्जु-दीप-दुति निरखि स्वर्गपुरि दुरत पुरन्दर ॥
हेम-पत्र-मय तत्र "गदाधर" जू हरि-मन्दिर ।
राजभवन-अवलम्बि राजकुल कीर्त्ति-थम्ब थिर ॥
गिरि ऊपर सों लगत नगर-छबि निपट निराली ।
वर्गाकृति घर बगर बिछे बहु सोभा-साली ॥
सोहत सो चहुँ ओर,सुघर घर-अवलि एक सी ।
बीच वितस्ता-धार सजत सुचि रजत-रेख सी ॥
धन्य "शारिका" भवन, "हरीपर्वत" गढ़-मण्डन ।
"दुध गङ्गा" सित अम्बु अङ्ग-परसन श्रम-खण्डन ॥
धन्य "शङ्कराचार्य" परम पावन गिरिशेखर ।
"खीरभवानी" कुण्ड, धन्य "मार्त्तण्ड" पुन्यथर ॥
धन्य तथा "बाराह मूल" कलि-कलुष-सूल-हर ।
मुनि-जन-मन-अनुकूल, सकल-अघ-उन्मूलन कर ॥
"अमरनाथ" सुचिगाथ, आदि शिव-तीरथ राजै ।
महामहिम हिम-लिङ्ग हिमाचल कोखि बिराजै ॥

धन्य राजप्रिय प्रजा, प्रजाप्रिय राज सुखारी।
धनि पुनीत नृपनीति, प्रीतिपथ-पोषनहारी॥
यवन आर्य बिच न्याय-मध्य कछु भेद न दीसत।
सोवत सुख की नींद सबै निज-नृपहि असीसत॥
धन्य भिन्न मत प्रजा मध्य यह भेद-अभावा।
विमल न्याय,नय,सुमति,शील,बल,बुद्धि प्रभावा॥
धन्य डोगरा-भानुवंश-अवतंस अवनिपति।
गोद्विज-कुल-प्रतिपाल विकसि रही उज्ज्वल कीरति॥
धन्य धर्मपति सुकृति -निरत हरि-भक्त-धुरन्धर।
श्री राजर्षि प्रतापसिंह कश्मीर-पुरन्दर॥
जिन अतिसय सज्जनता को परिचय मोहि दीनौ।
हित सों बोलि सनेह सहित सन्मानित कीनौ॥
प्रकृति यहाँ एकान्त बैठि निज रूप संवारति।
पल पल पलटति भेस छनिक छवि छिन छिन धारति॥
विमल-अम्बु-सर मुकुरन महं मुख-बिम्ब निहारति।
अपनो छवि पै मोहि आप ही तन मन वारति॥
सजति, सजावति, सरसति, हरसति, दरसति प्यारी।
बहुरि सराहति भाग पाय सुठि चित्तरसारी॥
विहरति विविधि-विलास-भरी जोवन के मद सनि।
ललकति,किलकति,पुलकति,निरखति,थिरकति,बनि ठनि॥
मधुर मञ्जु छबि पुञ्ज छटा छिरकति बन कुञ्जन।
चितवति,रिझवति,हसति,डसति,मुसक्याति, हरितमन॥
यहँ सुरूप सिङ्गार रूप धरि धरि बहु भांतिन।
सर, सरिता, गिरि, शिखर, गगन, गह्वर, तरुवर तृन॥
पूरन करबे काज कामना अपने मन की।
किङ्करता करि रह्यौ प्रकृति-पङ्कज-चरनन की॥

चहुँ दिसि हिम-गिरि-सिखर, हीर-मनि मौल अवलि मनु ।
स्रवत सरित-सित-धार, द्रवत सोइ चन्द्रहार जनु ॥
फल फूलन छबि छटा छई जो बन उपवन की ।
उदित भई मनु अवनि-उदर सों, निधि रतनन की ॥
तुहिन-सिखर, सरिता, सर, विपिनन की मिलि सो छबि ।
छई मण्डलाकार, रही चारहुँ दिसि यों फबि ॥
मानहु मनिमय मौलि-माल-आकृति अलबेली ।
बांधी बिधि अनमोल गोल भारत सिर सेली ॥
अर्द्ध चन्द्र सम सिखर-स्रैनि कहुँ यों छबि छाई ।
मानहु चन्दन धौरि, गौरि-गुरु, खौरि लगाई ॥
पुनि तिन स्रैनिन बीच वितस्ता रेख जु राजति ।
वैष्णव "श्री" अरु शिव-त्रिशूल की आभा भ्राजति ॥

["काश्मीर-सुखमा" से]

[२]

जगत सचाई सार ।

कहो न प्यारे मुझसे ऐसा-"झूठा है यह सब संसार ।
थोथा झगड़ा, जो का रगड़ा, केवल दुख का हेतु अपार ॥
माना हमने वस्तु जगत की नाशवान हैं निस्सन्देह ।
फिर भी तो छोड़ा नहिं जाता, पलभर को भी उनसे नेह ॥
लगा हुआ है वस्तु मात्र का एक दूसरे से सम्बन्ध ।
दूषित क्यों कर हो सकता है उस कर्त्ता का अटल प्रबन्ध ?
जगत है सच्चा, तनक न कच्चा, समझो बच्चा इसका भेद ।
पीओ खाओ, सब सुख पाओ, कभी न लाओ मन में खेद ॥
" मिट्टी उढ़ौना, मिट्टी बिछौना, मिट्टी दाना पानी है ।
मिट्टी ही तन बदन हमारा, सो सब ठीक कहानी है ॥

पर जो उलटा समझ के इसको बने आपही ज्ञानी है।
मिट्टी करता है जीवन को, और बड़ा अज्ञानी है॥
मिट्टी क्या है सोचो तो टुक अक़ल लड़ाके प्यारे मित्र।
पञ्च-महा-भूतों में धसके, देखो इसकी बात विचित्र॥
परम पवित्र पावनी पृथ्वी, भरी सकल सुघराई से।
पद पद पर शोभा से छाई, ईश्वर की चतुराई से॥
अति अमोल रत्नों की जननी, सब द्रव्यों की माता है।
सदा सुधारस भरी, खरी, यह सब प्रकार सुखदाता है॥
सब जीवों की भौतिक काया इससे पोषण पाती है।
जीव से नाता छुट जाने पर इसीमें वह मिल जाती है॥
तुमसे, पृथ्वी से, मिट्टी से, है बस इतना ही सम्बन्ध।
काम तुम्हारे आती है वह, सुन्दर यह प्राकृतिक निबन्ध॥
समझ के सारे जगत को मिट्टी, मिट्टी जो कि रमाता है।
मिट्टी करके सर्वस अपना, मिट्टी में मिल जाता है॥
कभी नहीं ऐसा मूरख नर सार सृष्टि को पाता है।
जैसा ही आया था जग में वैसा ही वह जाता है॥
इस शरीर से जो मनुष्य नहिं कुछ भी लाभ उठाता है।
उससे तो वह पशू भला जो काम सैकड़ों आता है॥
उसका जन्म व्यर्थ है जो नर पौरुष कुछ न दिखाता है।
न इसलोक, ना उसी लोक में हाथ उसे कुछ आता है॥
ऐसा कायर तो पृथ्वी को वृथा भार पहुँचाता है।
अपना जीना ही जिसको इक बड़ा बोझ होजाता है॥
जो तन मन से करता है श्रम, उचित रीति से चलता है।
सारी वसुधा का क्रम क्रम से, सर्वस उसको मिलता है॥
हाथ, पैर और नाक, कान, बुद्धि से काम जो लेता है।
जीवन का सुख पाता है वह, औरों को सुख देता है॥

पुत्र, कलत्र, मित्र, बान्धव में फैला कर सच्चा आनन्द ।
काम जगत का करता है वह,रहता है सुख से स्वच्छन्द ॥
दुख कब ऐसे पुरुष-सिंह के पास फटकने पाता है ।
वह तो आलस का साथी है, आलसियों पर जाता है ॥
जब तक तुम इस जग में सच्ची धर्म रीति पर चलते हो ।
तब तक निस्सन्देह निरन्तर सब बातों में फलते हो ॥
सारा सांसारिक सुख पाकर ईश्वर को पहिचानौ हौ ।
उसकी विद्यमानता, सत्ता, बस्तु मात्र में जानौ हौ ॥
रचा उसीका है जब यह जग निश्चय उसको प्यारा है ।
इसमें दोष लगाना अपने लिये दोष का द्वारा है ॥
ध्यान लगा के जो देखो तुम सृष्टी की सुघराई को ।
बात बात में पाओगे उस ईश्वर की चतुराई को ॥
ये सब भाँति भाँति के पत्ती ये सब रङ्ग रङ्ग के फूल ।
ये बन की लहलही लता नव ललित ललित शोभा की मूल ॥
ये नदियाँ, ये झील सरोवर, कमलों पर भौंरों की गुञ्ज ।
बड़े सुरीले बोलों से अनमोल घनी वृक्षों की कुञ्ज ॥
ये पर्वत की रम्य शिखा औ शोभा सहित चढ़ाव उतार ।
निर्मल जल के सोते झरने, सोमा रहित महाविस्तार ॥
छै प्रकार की ऋतु का होना नित नवीन शोभा के सङ्ग ।
पाकर काल वनस्पति फलना, रूप बदलना रङ्ग बिरङ्ग ॥
चाँद सूर्य की अद्भुत शोभा, बारी से आना दिन रात ।
त्यों अनन्त तारा मण्डल से सज जाना रजनी का गात ॥
यह समुद्र का पृथ्वी तल पर छाया जो जलमय विस्तार ।
उसमें से मेघों के मण्डल हों अनन्त उत्पन्न अपार ॥
तर्जन गर्जन घन मण्डल की बिजली वर्षा का सञ्चार ।
जिसमें दीखे परमेश्वर की लीला अद्भुत अपरम्पार ॥

उस कारीगर ने कैसा यह सुन्दर चित्र बनाया है।
कहीं पै जलमय, कहीं रेतमय "कहीं धूप कहीं छाया है" ॥
विविध रूप का अनोखा अचरज जिसके बीच समाया है।
कोई कहता 'क़ुदरत' जिसको कोई कहता 'माया' है ॥
पांच बजे तड़के उठके जिस दम हम न्हाते धोते हैं।
आधी रात होने से उस दिन लण्डन वाले सोते हैं!
यहाँ जिन दिनों गर्मी से सब के घर पङ्खे चलते हैं।
आस्ट्रेल्या वालों के घर में गरम कोयले जलते हैं!
इस प्रकार के दृष्य अनेकों दृष्टि नित्य जब आते हैं।
अचरज युक्त अनूपम अनुभव वे मन में उपजाते हैं ॥
इन सब के कारण से होता नहीं है किसके मन को सुख।
भला किसी को बताइये तो पहुँचा है इनसे कुछ दुख ॥
सब स्वभाव के मनुष्य जिन्की सदा प्रशंसा गाते हैं।
जोगी, जती, विरक्त, उदासी भी उत्तम बतलाते हैं ॥
जो नेत्रों से दिखाई देता, कानों से सुन पड़ता है।
जिसको चित्त ग्रहण करता है जिससे कुछ न बिगड़ता है ॥
सत् पुरुषों ने जिसको बारम्बार पुकारा अच्छा है।
जो वो ही नहिं सच्चा है तो भला और क्या सच्चा है?
जिसका यह सब रचा हुआ है, वह परमेश्वर सच्चा है।
जगत के सच्चे होने का मत क्यों करके तब कच्चा है?
जो सच्चा है, वह प्यारा है, वही सकल सुख का भण्डार।
वही मनुष्यों के जीवन को देता है आनन्द अपार ॥
जगत का झूठा झूठा कहके करो नहीं उसका अपमान।
बुद्धि को अपने काम में लाओ, हे मनुष्य! हे बुद्धि निधान!
जिसको तुम जानो यह दुख है सहो उसे धीरज के साथ।
दुख में सुख को अनुभव करना, है मनुष्य के अपने हाथ ॥

दुख तो मनुष्य के जीवन की एक कसौटी है मानो।
इसमें जैसा रहे रङ्ग, वैसा ही भाव उसका जानो॥
काम क्रोध औ लोभ मोह भी जीवन के सहयोगी हैं।
इनके बस में जो पड़ता है, उसके ये प्रतियोगी हैं॥
इनको जो अपने मन से जड़ मूल मिटाना चाहे हैं।
वे असमर्थ कभी न जगत का सत उद्देश्य निबाहे हैं॥
जैसा यह जग बना हुआ है वैसा इसको पहिचानो।
ईश्वर की व्यापकता इसमें सभी ठौर प्यारे जानो॥
देख देख उसकी महिमा, गुण निशिवासर उसको गाओ।
धर्म अर्थ औ काम मोक्ष पाने में पौरुष दिखलाओ॥
रूप जगत का यथार्थ देखो, पड़ो भूल में कभी न तुम।
जीवन के कर्त्तव्य निबाहो, समझ के उसके शुद्ध नियम॥
चलोगे सच्चे मन से जो तुम निर्मल नियमों के अनुसार।
तो अवश्य प्यारे जानोगे सारा जगत सचाई सार॥

["मनोविनोद" से।]

श्री युत मधुसूधन गोस्वामी।

चक्षुदान।

[१]

आस्तिक नास्तिक सब के अन्तर लगा रहै सन्देह यही।
क्या जानैं कैसे वह जग का कर्त्ता कोई है कि नहीं॥
है कि नहीं,इसका कब किसने कहिये किया है ठीक बिचार?
इस संशय में भजै न उसको करते अपने आप बिगार॥

[२]

सेवा क्या होगी बिन जाने सेव्य वस्तु के कहो भला?
लादे डोलो क्यों न ज्ञान के सिर पर रख के भरे डला॥
दुःख यही हा! ढूढ़ ढूढ़ कर हमने उसे न पाया है।
लिपट कपट के जगत जाल में मिथ्या जनम गँवाया है॥

[३]

युग युग योगी कर समाधि जिसका दरशन नहिं पाते हैं।
पलक मींच बिन देखे उसको हम छिन में अकुलाते हैं॥
कह देते हैं है भी, तौ है उसका कुछ आकार नहीं।
क्यों न देखते होता तौ हम यही कहैं एक युक्ति सही॥

[४]

विपद आय पड़ती है जब कुछ तब पुकारते रो रो कर।
काकु-बिनय मन ही मन करते अँसुओं से मुख धोधो कर॥
"बिनसै विपद" भूल जाते हैं करने लगते तर्क बड़े।
फिर अपना पुरुषारथ जग में कहने लगते खड़े खड़े॥

[५]

ऐसा कौन कृतघ्नी होगा हाल भूल जो जाता है !
इसी लिये यह जीव जगत में पद पद में दुख पाता है ॥
करो सरल विश्वास छोड़ कर तर्क कुतर्कों का धन्दा ।
अभी अज्ञता माया का कट जाता है देखो फन्दा ॥

[६]

आओ चरण शरण श्रीपति की करुणा,करुणा निकर करैं ।
सूना सूखा हृदय तुम्हारा भक्ति प्रेम रस रास भरैं ॥
बिना किये अनुताप कृपा भाजन क्यों कर कोई होगा ?
बिना किये मन प्राण समर्पण चिदानन्द किसने भोगा ?

[७]

'मधुसूदन' की यही याचना है सब से जोड़े जुग कर ।
तर्क छोड़ विश्वास बाँध दृढ़ सभी करो हरि पर निर्भर ॥
वो देखो दो भुजा बढ़ाये तुम्हें अङ्क भर लेते हैं ।
पाप दुःख अपराध दूर कर निज पद छाया देते हैं ॥

[८]

उस त्रिताप-हरनी पद-पङ्कज छाया में निश्चिन्त रहो ।
अनुभव कर जो झूँठ होय तो मुझे एक की लाख कहो ॥
तब जानोगे कैसा है और कहाँ है उसका क्या आकार !
खुली आँख से देख सकोगे सब उसका लीला विस्तार ॥

[" श्री राघवेन्द्र " से ।]

बाबू बालमुकुन्द जी गुप्त।

[जन्म सं० १९२१ वि०, मृत्यु १९६४ वि० । आप पञ्जाबी वैश्य थे। आपको जन्म से उर्दू पढ़ायी गयी थी । उसमें आप दक्ष थे। आपने 'अख़बारेचुनार' और 'कोहेनूर' जैसे प्रसिद्ध उर्दू पत्रों का सम्पादन किया था। फिर आपने हिन्दी सीखी और "हिन्दोस्थान" के सहकारी सम्पादक हुए। फिर 'बङ्गवासी' के सहकारी सम्पादक हुए। अनन्तर आपने 'भारतमित्र' का सम्पादन मृत्यु तक किया। इनकी लिखी पुस्तकें 'रत्नावली नाटिका,' हरिदास,' 'स्फुटकविता' 'हिन्दी-खिलौना' आदि हैं।]

जय रामचन्द्र।

[१]

जयति जयति जय रामचन्द्र रघुवंश बिभूषन।
भक्तन हित अवतार धरन, नासन भव-दूषन॥
जयति भानुकुल भानु कोटि ब्रह्माण्ड प्रकाशन।
जयति जयति, अज्ञान-मोह-निशि तिमिर, विनाशन॥

जय निज लीलावश वपु धरन,
करन जगत कल्यानमय।
जय कर-धनु-शर तूनीर-कटि,
सिया सहित श्रीराम जय॥

[२]

शिव विरञ्चि अहिराज पार कोऊ नहिं पावैं।
सनकादिक शुक नारद शारद ध्यान लगावैं॥

मुनिगन जोग समाधि धरहिं बहुविधि जा कारन।
तदपि रूप वह सकहिं न करि उर अन्तर धारन॥
सो अखिल ब्रह्म शिशु-रूप धरि,
खेलत दशरथ के सदन।
कौशल्या निरखत मुदित मन,
जयति राम आनन्द घन॥

[३]

सहित अनुज बन बीच करी मुनिमख रखवारी।
मारग जात निहारि नारि पाथर की तारी॥
जनकपुरी में जाय यज्ञ को मान बढ़ायो।
नृपति प्रतिज्ञा राखि सोय को मन हुलसायो॥
शिव चाप तोरि, खल नृपन को,
मान दर्प चूरन कस्यो।
अरु भृगुकुल कमल पतङ्ग को,
चाप खैंचि संशय हस्यो॥

[४]

सुनि बिमात के वचन तुरत बन को उठि धाये।
रुदित छोड़ि पितु मात प्रजा, मन सोच न लाये॥
अवध तजन को खेद नाहिं धन धाम तजन कर।
किन्तु भरत को ध्यान एक उर माहिं निरन्तर॥
जय जटाजूट कर धनुष शर,
अङ्ग भस्म बलकल-बसन।
सिय अनुज सहित बन गमन करि,
पिता वचन पालन करन॥

[५]

नेही जान निषाद नीच छाती सों लायो ।
लछमन सम प्रिय भाषि प्रेम सों हियो जुड़ायो ॥
स्वाद बखानि बखानि भीलनी के फल खाये ।
निज कर-पङ्कज ताहि दाह कर आगे धाये ॥
परस्यो कर सीस जटायु निज ,
धाम ताहि छन में दयो ।
जय-पवन सुवन की प्रीति लखि ,
अङ्ग अङ्ग पुलकित भयो ॥

[६]

सुग्रीवहिं लखि दुखी आपनी दसा बिसारी ।
फरकहिं भुजा विशाल देह थहरावत सारी ॥
एक बान सों मारि बालि सुरधाम पठायो ।
तारा कहँ परबोधि भक्त को कष्ट मिटायो ॥
जय बाल-सुतहि पायक करन ,
निरखि जाहि पुलकित हियो ।
करि तिलक माथ कपि राय के ,
भीत-रङ्क राजा कियो ॥

[७]

छाड़ि गेह अरि-भ्रात आय चरनन सिर नायो ।
अग्रज के डर डरयो, मनहिं अति ही सकुचायो ॥

चितवत ही इक बार अहो ! पलटी ताकी गति ।
लात खाय कै कढ़यौ भयो छन में लङ्का पति ॥

दससीस मारि महिभार हरि,
असुरन दीन्हीं विमल गति ।
जय जयति राम रघु-बंश-मनि,
जाहि दीन पर नेह अति ॥

[८]

देवराज भये मुदित अमरपुर बजत बधाई ।
बर्जहिं दुन्दुभी, भीर बिमानन की नभ छाई ॥
सुरबाला सब मुदित अङ्ग फूली न समावैं ।
फूलन बर्षा होय देवगन अस्तुति गावैं ॥

असित जिये बहु काल प्रभु,
असुर मार दीन्हो अभय ।
अब जाय अवध परतोषिये,
जयति राम रघुबीर जय ।

[९]

पूरन शशि जिमि निरखि उदधि बाढ़त तरङ्ग सों ।
देखि घटा घनघोर मोर नाचत उमङ्ग सों ॥
तैसो आज अवध-सुख उमड़त नाहिं समावत ।
निरखि राम रिपु जीति भ्रात सीता सङ्ग आवत ॥

प्रमुदित गुरु, जननी, नारि, नर ,
सुख न जात केहु सौं कह्यौ।
अरु भ्रात सिरोमनि भरत कै ,
मोद जलधि हिय में बह्यौ॥

[१०]

हम प्रभु दीन मलीन हीन सब भाँति दुखारी।
धर्म रहित, धन रहित, ध्यानच्युत, बहु अविचारी॥
यदपि न काहू भाँति सुखी भोगत करमन फल।
सोचि सोचि निज दसा भर्‍यो आवत आँखिन जल॥
पै तदपि होत सूखो हियो ,
हरयो, सुमिरि दिन आज को।
राजतिलक हिय में बसौ ,
श्रीरामचन्द्र महाराज को॥

["स्फुट-कविता" से।]

बाबू श्री राधाकृष्ण दास जी।

[जन्म सं० १९२२ वि०, मृत्यु सं० १९६३ वि०। ये भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के फुफेरे भाई थे। भारतेन्दु ने इन्हें अपने निरीक्षण में रखा, और इन्हें अँग्रेज़ी, फ़ारसी, बङ्गला उर्दू पढ़ाई। हिन्दी तो इनकी मातृ-भाषा ही थी। आपके लिखे ग्रन्थ ये हैं:-"दुःखिनीबाला", "निस्सहाय हिन्द," "महारानी पद्मावती", "प्रताप नाटक"। सब मिला कर आपने कोई २५ पुस्तकें लिखी थीं। आप एक उत्तम कवि थे और वैष्णव मतावलम्बी थे।]

[१]

प्रताप-विसर्जन।

[नन्ददास जी के भ्रमर गीत की चाल पर]

उन्नति सिर गिरि-अवलि गगन सों उत बतरावत।
इत सरवर पाताल भेदि अति छबि छहरावत॥
मन्द पवन सीरी बहै होन लगे पतझार।
पर्नकुटी नरसिंह लसत इक, मानौ कोउ अवतार
हरन भुव भार को॥

मुखमण्डल अति शान्त कान्तिमय चितवन सोहैं।
भरे अनेकन भाव व्यग्र चारहुँ दिसि जोहैं॥
वीर मण्डली घेरि कै प्रभु की गति रहे जोहि।
मनु भीषम सरसयन परे कौरव पाण्डव रहे सोहि
हृदय उमग्यो परै॥

लखि निज प्रभु की अन्त समय की वेदन भारी।
व्याकुल सब मुख तकैं सकैं धीरज नहिं धारी॥

राव सलूमर रोकि निज हिय उद्वेग महान।
हाथ जोरि बिनती किया अति हरुए लगि प्रभु कान
बैन आरत सने॥

"अहो नाथ अहो वीरसिरोमनि भारतस्वामी!
हिन्दू कीरति थापन में समर्थ सुभ नामी॥
कहाँ वृत्ति है आपकी, कौन सोच कहा ध्यान?
देखि कष्ट हिय फटत है केहि सङ्कट में हैं प्रान
कृपा करिकै कहौ॥"

सुनत दुख भरे बैन नैन तिनके दिसि फेर्‌यौ।
भरि कै दीरघ साँस सबन तन व्याकुल हेर्‌यौ॥
पुनि लखि सुत तन-फेरि मुख अति संतप्त अधीर।
धरि धीरज अति छीन सुर बोले बचन गम्भीर
परम आतङ्क सों॥

"हे हे वीरसिरोमनि! सब सरदार हमारे।
हे विपत्तिसहचर! प्रताप के प्रानपियारे॥
तुव भुजबल लहि मैं भयो रच्छा करन समर्थ।
मातृभूमि स्वाधीनता कों प्रबल सत्रु करि व्यर्थ
अनेकन कष्ट सहि॥"

प्रानन हूँ ते प्रिय स्वतंत्रता कब तें खोई।
हाय! आर्यगन भए दास निज गौरव धोई॥
यवन विदेसी सत्रु के दास बनें करि गर्व।
नस्वर तन सुख कारनैं आर्य-कीर्त्ति करि खर्व
भूलि निज रूप कों॥

या प्रताप ने उचित कह्यौ कै अनुचित भाख्यौ।
वा स्वतंत्रता हेतु जगत सुख तृन सम नाख्यौ॥

ढाइ महल खण्डहर किए सुख सामान बिहाय ।
छानि बननि की धूरि को गिरि गिरि में टकराय
जनम दुख झेलि कैं ॥

स्वर्गहु तें बढ़ि जन्मभूमि करि रहित यवन अरि ।
सूखी रोटी अति पवित्र जल, छुधा तृप्त करि ॥
सो खोई बहु दिनन की सुख स्वतंत्रता पाय ।
बन्धु बान्धव बीच में हम मरत आजु हरषाय
क्लेस को लेस नहिं ॥

पै जब आवत ध्यान, लह्यो जो सहि दुख इतने ।
सो अमूल्य निधि मम पाछें रहि है दिन कितने ॥
तुच्छ बासना में पग्यो दुःख सहन असमर्थ ।
चञ्चल अमरहिं देखि कै होत आस सब व्यर्थ
सोचि भावी दसा ॥

कहि दुख मय यह बचन अमर तन दुख सों देख्यो ।
मूँदि नयन जल भरे स्वाँस लै सब दिसि पेख्यो ॥
सन्नाटा चहुँ दिसि छयो सबके मुख गम्भीर ।
पृथ्वी दिसि हेरैं सबै भरे महा हिय पीर
बैन नहिं कछु कढ़ैं ॥

करि साहस पुनि राव सलूमर सीस नवायो ।
अभिवादन करि अति विनीत ये बचन सुनायो ॥
"पृथ्वीनाथ! यह सोच क्यों उपज्यौ प्रभु हिय आज ।
कुँअर बहादुर तें परी कौन चूक केहि काज
निरासा जो भई ॥"

बदलि पास कछु सँभरि बैन परताप कह्यौ पुनि ।
अति गम्भीर सतेज मनहुँ गुञ्जत केहरि धुनि ॥

"सुनहु वीर मेवार के गौरव राखनहार।
मेरे हिय की वेदना-जो कियो आस सब छार
अमर के कर्म ने॥

एक दिवस यहि कुटी अमर मेरे ढिग बैठ्यौ।
इतनेहि में मृग एक आनि कै तहाँ जु पैठ्यौ॥
हरबराइ सन्धानि सर अमर चल्यो ता ओर।
कुटिया के या बाँस में फँस्यौ पाग को छोर
अमर तौहु न रुक्यो॥

बढ़न चहत आगे वह पगिया खैंचत पाछे।
पै नहिं जिय में धीर छुड़ावै ताकों आछे॥
पागहु फटी सिकार हू लग्यौ न याके हाथ।
पटकि पाग लखि झोपड़िहि अतिहि क्रोध के साथ
बैन मुँख तें कढ़े॥

'रहु रहु रे निर्बोध! अमर गति रोकन हारे।
हम न लेहिंगे साँस बिना अब तोहि उजारे॥
राजभवन निर्मान करि तेरो चिन्ह मिटाइ।
जो दुख पाए तोहि में सो दैहौं सबै भुलाइ
सुखद आवास रचि॥'

तबही तें ये बैन सूल सम खटकत मम हिय।
यह परि सुख बासना अवसि दुख दिवस बिसारिय॥
अति अमोल स्वाधीनता तुच्छ बिषय के दाम।
बेचि, सिसोदिय कीर्त्ति को यह करि है अवसि निकाम
रुके हम सोचि एहि॥"

हिन्दूपति के बैन सुनत छत्री कोपे सब।
अति पवित्र रजपूत रुधिर नस नस दौरयो तब॥

लै लै असि दृढ़ पन कियो, छुवै छुवै प्रभु के पाँय।
"जौ लौं तन, स्वाधीनता तौ लौं रखौ बचाय
सङ्क करिए न कछु॥"

दृढ़ प्रतिज्ञ छत्रिन पन सुनि राना मुख विकस्यो।
आस लता डह डही भई मुख तें यह निकस्यो॥
"धन्य वीर तुम जोग ही यह पन तुम्हहिं सुहाय।
अब हम सुख सों मरत हैं, हरि तुम्हरे सदासहाय
यहै आसीस मम॥"

देखत देखत शान्तिसदन परताप सिधाए।
पराधीनता मेघ बहुरि भारत सिर छाए॥
सब ही सुख परताप सङ्ग कियो बिसर्जन हाय!
दीन हीन भारत रह्यौ सुख सम्पदा गँवाय!!
त्राहि प्रभु रच्छिए!!!

[२]

पृथ्वीराज-प्रयाण।

[१]

जननी हमैं सीख अब दीजै।
परम कुपूत पूत तेरो यह,
ताहि बिदा अब कीजै॥
पूत कुपूत होत बहुतै पै,
होत कुमाता नाहीं।
बरु कुपूत पै अधिक मातु रुचि,
होतै रही सदाहीं॥

[२]

करिकै यहै भरोस मातु माँगत,
तुमपै कर जोरे।
छमियो सब अपराध हमारे,
पुत्र-सनेह निहोरे॥

[३]

करिकै बहुत साध जनमायो,
बहु आसा करि पोष्यो।
राज-छत्र दै मान बढ़ायो,
सबहि भाँति सन्तोष्यो॥

[४]

पै या भाग्यहीन ने माना!
कोउ आसा न पुरायो।
केवल बोझ भयो तुव ऊपर,
दिन दिन अधिक सतायो!

[५]

रक्त-प्रवाह बहाइ, जीति बहु,
देस छत्र सिर धारयो।
राज बढ़ावन लोभ मातु हम,
देश बन्धु बहु मारयो॥

[६]

सोइ सब पाप आइ सिर नाच्यो,
छलियन के छल हारयो।
हाय मातु! तोहि दै यवनन कर,
चहत विदेश सिधारयो॥

[७]

परम पवित्र शस्य धन पूरित ,
रत्नमई सुखदाई ।
जासु अनूप रूप पै सुरगन ,
रहत सदा ललचाई ॥

[८]

रही अनादि काल सों पालित ,
जो आरज भुज छाहीं ।
ताहि अधम अति भाग्यहीन हम ,
राखि सकें हठ नाहीं ॥

[९]

मातु ! बहुत सुख पायो तुम मम
पुरखन के आधीना ।
अब वह सुख सपने से ह्वै हैं ,
हाय दैव ! कह कीना ! ! !

[१०]

यद्यपि हम सबही विधि दोषी ,
लग्यौ कलङ्क हमारे ।
पै निर्दोष मातु सब भाँति हि ,
जौ जिय न्याय बिचारे ॥

[११]

अपुने हि भाई बन्धु आपही ,
करैं जो छल अरु द्रोहा ।
तौ रच्छा ह्वै सकै कौन विधि ,
जो विधि ही बुध मोहा ॥

[१२]

ताहू पै निज भुज प्रताप
दुष्टन कों दियो भगाई।
छली चोर छल सों जीते
याकी नहिं हमैं हँसाई॥

[१३]

होनहार जो रह्यौ भयो अब
सोच किये फल नाहीं।
मातु बिदा अब देहु हाय!
बिछुरत तुव पद नख छाहीं॥

[१४]

पुन्य-भूमि में जनम हाय! अब
मरन चल्यौ मरुदेसा।
आर्य-ध्वजा दै शत्रु हाथ में,
यह अति हाय कलेसा!

[१५]

अपुने किये कर्म फल भोगन
में कछु दुख मोहिं नाहीं।
पै जननी तुव भावि दसा
विचारि हृदय फटि जाहीं॥

[१६]

ये देवालय वेदशास्त्र ये
यह गोब्राह्मण पूजा।

यह पवित्र तम धर्म भाव जग
में न जासु सम दूजा॥

[१७]

हाय ! महाद्रोही यवनन-कर
परि सब कलुषित ह्वै हैं।
पाप ताप पूरित भुवि करि कै
घोर यंत्रणा दैहैं॥

[१८]

जाकी विद्या कला और
कौशल की छटा लुभाई।
इकटक देखत रहत जगत
मोहित ह्वै सुधि बिसराई॥

[१९]

होइ यवन पद दलित सोइ सब
माटी ही ह्वै जैहै।
चारहु दिसि मूढ़ता बेबसी,
कछु दिन माँहि लखैहै॥

[२०]

जा भारत प्रताप दिसि लख जग
चख चकचौंधी लागै।
हाय ! कहा सो लुटि है पद तर
सोचत ही बुधि भागै॥

[२१]

ऐसे करत तर्क व्याकुल ह्वै
कण्ठ रुद्ध ह्वै आयो।

" चल काफ़िर क्या रोता है "
इक यवन ढकेल सुनायो॥

[२२]

गिरत सम्हारि सचेत होइ कर-
जोरि जननि पग लागी।
देश बन्धु दिसि हेरि बचन,
बोले आरत रसपागी॥

[२३]

भैया! मैया दे यवनन कर,
हम तो जात बिदेसा।
तुम रच्छा करिहौ जहँ लौं बस,
होइ न याहि कलेसा॥

[२४]

जद्यपि पराधीन भए पै जौ
आत्म पनौ न बिसरि हौ।
धर्म, ऐक्य, विद्या अनुसरि हौ,
तौ अरि सीस बिहरि हौ॥

[२५]

जैसे भई दसा यह सो तुम,
निज नैनन हिं निहारी।
दूर बहाइ खोर सो इक है,
भारत मातु उबारी॥

[२६]

जिनि भूलौ निज पुरुषन के
गौरव की भ्रात कहानी ।
सिमिटि शत्रु बल मेंटि उबारौ ,
भारत भुव सुख खानी ॥

[२७]

सुनत वचन यह यवन सैन चहुँ
दिसि सों गरजन लागो ।
मुसुक बाँधि भारत गौरव को ,
भारत सों लै भागी ॥

[२८]

चिर स्वतंत्रता चिर गौरव चिर
सुख छिन माँहि बिलाई ।
बँधि-चिर-दिन दासत्व-शृङ्खला ,
भारत भुवि बिलखाई ॥

[२९]

दीन-बन्धु निज बिरद सम्हारौ ,
दीन दुखित दुख हारौ ।
हे भारत! भुवनाथ!! हाथ गहि ,
भारत भूमि उबारो !!!

[" सरस्वती " से ।]

———

गोस्वामी श्री किशोरीलाल जी।

[१]

गङ्गावतरण।

"तरलित तुमुल तरङ्गवती सुरधुनी सुशीला।
करत पुनीत व्योमपथ उतरति है करि लीला॥
सावधान दिक्कुञ्जर; धरा! तुहू सुधि इति दै।
रे फनीस! धरु याहि; कमठ! ताही मधि चित दै॥
हैमवती यह बहिन उमा की परम पुनीता।
आवत, पाप-पुञ्ज-जन सुगति देन मनचीता॥
हटौ, बचौ रे गगनबिहारी! मारग छोरौ।
नतकन्धर सों विनय सहित तृन ह्वै तृन तोरौ॥
भानुबंस अवतंस महाभागवत भगीरथ।
कियो नाम तुहू ने या छिति पै सुभ तीरथ॥
अब राजर्षि! तपस्या तेरी यह फल लाई।
सजग होहु शिव!" गगन गिरा यों भाषि थिराई॥
जहँ लगि हो अवकाश व्योमभारती समोई।
बढ़ी प्रतिध्वनि आघात प्रतिघात विलोई॥
डगमगान दिक्कुञ्जर, धरनी डोलन लागी।
शेष सगमगाने, कच्छप की थिरता भागी॥
देवासुर नर नाग चराचर सरकि सकाने।
जलचर थलचर नभचर कम्पित-गात चुपाने॥
पाइ विपुल अवकाश आज आकाश शब्दमय।
कियो नाम निज सत्य भाषि, "गङ्गे! जय जय जय!!

कोटि भानुगति गर्व खर्व करि धाई गङ्गा।
पितागेह तजि व्योमबीथि मधि आई गङ्गा॥
ठठकि एक छिन गगन मध्य मुसकाई गङ्गा।
चितै शम्भु निज गति की बात सुनाई गङ्गा॥
"हे हे भाम! भवानीपति! मम बेग न जानहु।
क्यों बरबस मम भार सहन को तुम हठ ठानहु॥
सहित तुमहिं कैलास भेदि पाताल सिधैहौं।
निज छोटी भगिनी को तब मुख कहा दिखैहौं॥
या बावरे भगीरथ की मति पै तुम भूले।
मसक होइ नग गहन चले, दैवहिं प्रतिकूले॥
अस्तु होहु तुम सजग;" भाषि यों अहमिति वानी।
नभमण्डल ते बेगहि धाई, चितै भवानी॥
सुनत व्यङ्गमय अहमिति बचन विषम-लोचन यों।
तमकि उठे रिस घोर मूर्त्ति धरि कोपपुञ्ज ज्यों॥
चाँपि पगन कैलास रौद्रवपु कटि कर दीन्हे।
पृष्ठभाग में जुगुल करन निज शूलहि लीन्हे॥
फट फटाइ निज जटा तिहूँ लोचन रिस बोरे।
ज्वाला-माला-भीषन आनन ओप अथोरे॥
करि ऊँचे मस्तक गङ्गा दिसि नैन तरेरे।
वाकी बेगवती तरलित गति हूँ को हेरे॥
अभिमानिनि के गर्व खर्व करिवे हित ठाढ़े।
मूर्त्तिमन्त रस रौद्र मनहुँ छिन छिन प्रति बाढ़े॥
विनय सहित ठाढ़े ह्वै राजा चितव शम्भु दिसि।
अति सकात निज हृदय मध्य लखि शङ्कर की रिसि॥
कबहुँ कबहुँ गङ्गा की दिसि हू पै दृग फेरत।
पुनि तामस अधिदैवहु की मानस-मति हेरत॥

नन्दी हूँ करि कोप ठड़ो चितवत शिव पाहीं।
मनहुँ आज वाहू के रिस की सीमा नाहीं॥
पारवती दै टेस पीठ नन्दी की ठाढ़ी।
चितवति गङ्गा दिसि धरकति छाती अति गाढ़ी॥
मनहुँ वेग धारा में निज गति पुञ्ज मिलावति।
वायुवेग प्रति छिन पाछे करि उतरति आवति॥
मुदित नैन सिथिलित सुअङ्ग वर बलित बसन तन।
खलित केस अति ललित छटा छिटकति चहुँ प्रति छिन॥
वह धावति आवति मुनि-जन-मानस हरषावत।
कै वाकी दिसि यह भूगोल गेंद सो धावत॥
कोटि कोटि घननादनि सों करि यह दिग कम्पित।
गिरी शम्भु की जटा मध्य गङ्गा करि झम्पित॥
घूमन लागी जटाजूट घनगहन मध्य वह।
चकित गर्व करि सर्व सकुच तन चसक नव्य वह॥
थरथराइ मन में सकाइ सिर नाइ सोच तें।
बिनवन लागी शिवहिं शैलबाला सकोच तें॥
इत राजर्षि भगीरथ हू विनती अति कीन्ही।
तब तजि कोप शम्भु गङ्गा की धारा दीन्ही॥
दिव्य सुरथ पै चढ़े भगीरथ आगे धाए।
पाछे भागीरथी चली चित चोप चढ़ाए॥
गर्जति उफनति झूमति हहहरात तट तोरति।
अनगिनतिन जनपद पद धौत करति छिति बोरति॥
जन्हु ऋषी के आश्रम कों जलप्लावन कीन्हों।
तब मुनि रिस करि गङ्गधार सारी पी लीन्हों॥
पै जब बहुरि करी विनती राजा कर जोरे।
तब जान्हवीधार काननि ते जन्हहि छोरे॥

मिली धार वा सगर सुवन की राख बहाई।
सागर सों मुरि कपिल मुनी के पग सिर नाई॥
ब्रह्मशाप तैं छूट गये सुर धाम सगरसुत।
"जय गङ्गे जय गङ्गे" यों कहि कहि तेहि विनवत॥
जब आई गङ्गा छिति पै मंगल की मूला।
भए चराचर मुदित मिटे सब के मन सूला॥
हरी भरी धरनी घरनी यह हरि की सोहति।
निज नव योवन को छन छटा छिटकि मन मोहति॥
नवयुग मानौ छयौ जगत में याके आए।
पै "मातगङ्गे" अब का लखियत मुँह बाये॥
तू कहुँ जाय बिलाइ, कैसी बनि सचुपाई।
हाथ! भयो यह कहा! अम्ब! गङ्गे लखु आई!!!
रहे न अब राजर्षि भगीरथ राम न राजा।
नहिं ब्रह्मर्षि जन्हु, कुलगुरु बशिष्ट महराजा॥
त्रेता द्वापर बीति अमल कलजुग को आयो।
हाय! पराधीनतापाश भारतहिं बधायो॥
उलट फेर हा! भयो बहुत गङ्गे! या भूपर!
तू छिति छोरि गई पताल, कै धायी ऊपर!
'भारत भारत' नाम आज आरत ह्वै बाँचो।
साँचो सब कछु गयो, ठाठ रहिगो सब काँचो॥
इन्द्रप्रस्थ अयोध्या मथुरा भूरि नसानी।
महा महा जनपद की अब ना रही निसानी॥
ग़ज़नी की आसुरी अनीक नीक सब नास्यो।
अन्धकार में पस्यो देस को देस उजास्यो॥
स्वामी ह्वै बहु बने दास दासी भारतजन।
आरज सों बरजोरी यवन भए अनगिनतिन॥

भाई भाई को तजि दीन्हों तनय बाप कों।
शिष्य गुरू को, पत्नी पति कों, जीव जाप कों॥
गिरो भयानक बज्राघात धर्म पै आई।
हँसी खुसी सब भगी, मँची चहुँ ओर रुवाई॥
ढहे देव मन्दिर अपार द्विज मारे कोटिन।
बाल वृद्ध बनिता जन के सिर कटे अनगिनतिन॥
ईंट यहाँ की मक्के में जा लगी निगोड़ी।
मन्दिर के सामान यवनगन मसज़िद जोड़ी॥
धन,जन,बल,पुरुषार्थ, सत्य सब नस्यो यहाँ को।
सब सोवत हैं नहि जानत भनि गयो कहाँ को॥
बधे पिथौराराय गए सब सूर अहेरी।
भयो छत्रकुल ध्वंस, हाय लागी नहिं देरी॥
राख, हाय, पद्मावति की मिल गयो पवन में।
धन्य अहो! परताप! सीस नहिं नवौ यवन में॥
कोटि वीर, अनगिनत वीरबाला सब नासी।
हाय! किते सोवति है तू गङ्गे! सुखरासी?
कब लैहैं अवतार कल्कि भगवान बतावहु?
छोरि आपुनी नींद, मातु गङ्गे! इत आवहु॥
छल बल के कल करि भारत जन बेगि जगावहु।
समल अमल करि हृदय निजत्व तिनहिं समुझावहु॥
धन, बल,विद्या,विनय,नीति, वाणिज्य, शिल्पवहु।
सीखहिं भारतवासी जन, जानहिं निजत्व यहु॥
पाइ सबै निज निज निजत्व भारतवासी जन।
"जय गङ्गे! जय गङ्गे! जय जय"भाषहिं प्रतिछिन॥

["सरस्वती" से।]

स्वर्गीय पण्डित माधवप्रसाद जी मिश्र ।

[जन्म सं० १९२८वि०, मृत्यु सं० १९६४वि० । आप भिवानी पञ्जाब के रहने वाले, गौड़ ब्राह्मण थे । हिन्दी के आप सुलेखक और कवि थे । आप "सुदर्शन" "वैश्योपकारक" मासिकपत्रों के सम्पादक थे । 'विशुद्ध चरितावली' 'सम्राट् विक्रमादित्य' आदि पुस्तकें आपने लिखी हैं । जैसे बड़े आप लेखक थे वैसे ही बड़े आप वक्ता भी थे । आपने मारवाड़ियों में बहुत से सामाजिक सुधारों की नींव डाली थी ।]

[१]

युवा संन्यासी ।

[मिशन-कालिज लाहौर के प्रोफेसर श्रीयुत पण्डित गोस्वामी रामतीर्थ जी एम. ए. के सन्यासोपलक्ष में ।]

[१]

गुणनिधान मतिमान सुखी सब भाँति एक लवपुर-वासी ।
युवा अवस्था बीच विप्रकुल-केतु हुआ है संन्यासी ॥
बिबिध-रीति से उस विरक्त को सुहृदबन्धु समझाय थके ।
गङ्गाजी के प्रवाह ज्यों पर उसे न वे सब रोक सके ॥

[२]

वृद्ध पिता माता की आशा, बिन व्याहो कन्या का भार ।
शिक्षा-हीन सुतों की ममता, पतिव्रता नारी का प्यार ॥
सन्मित्रों की प्रीति और कालिज वालों का निर्मल प्रेम ।
त्याग, एक अनुराग किया उसने विराग में तज सब नेम ॥

[३]

" प्राणनाथ ! बालक सुत दुहिता"–यों कहती प्यारी छोड़ी।
" हाय ! वत्स ! वृद्धा के धन !! " यों रोती महतारी छोड़ी॥
चिर सहचरी "रियाज़ी" छोड़ी, रम्यतटी रावी छोड़ी।
शिखा सूत्र के साथ हाय ! उन बोली पञ्जाबी छोड़ी॥

[४]

धन्य पञ्चनद भूमि जहाँ इस बड़भागी ने जन्म लिया !
धन्य जनक जननी जिनके घर इस त्यागी ने जन्म लिया !
धन्य सती जिसका पति मरने से पहिले होजाय अमर !
धन्य धन्य सन्तान पिता जिनका जगदीश्वर पर निर्भर !

[५]

शोकग्रस्त होगयी लवपुरी उसकी हुई बिदाई जब।
द्रवीभूत कैसे न होय मन ? संन्यासी हो भाई जब॥
खिन्न, अश्रुमुख वृद्ध लगे कहने " मङ्गल तव मारग हो।
जीवन्मुक्ति सहाय ब्रह्मविद्या में सत्वर पारग हो॥ "

[६]

कुछ मित्रों ने हृदय थाम कर कहा कि-"प्यारे सुन लेना।
बात अन्त को, आज हमारी, ज़रा ध्यान इस पर देना॥
समदर्शी ऋषि मुनियों को भी भारत प्यारा लगता था।
इस कारण यह विद्याबल में जग से न्यारा लगता था॥

[७]

सर्वत्याग कर महाभाग जो देशोन्नति में दे जीवन्।
धन्यवाद देते हैं देवगण भी उसको हो प्रमुदित-मन॥
अपनी भाषा भेष भाव औ भोजन प्यारे भाइन को।
नहीं समझता उत्तम, समझो उससे भला लुगाइन को॥ "

[८]

"एवमस्तु"-कर उच्चारन इन सब के उसने उत्तर में ।
कहा "अलविदा" और चला वह मनभावन उस अवसर में ॥
लगे बर्षने पुष्प और जय जय की हो तब उठी ध्वनी ।
मानों भिक्षुक नहीं वहाँ से चला विश्व का कोई धनी ॥

[९]

ज्यों नगरों में होय स्वच्छता जब आता है कोई लाट ।
त्यों बन पर्वत प्रकृति-परिष्कृत हुए समझ मानो सम्राट ॥
निष्कण्टक पथ हुआ पवन से वारिद ने जल छिड़क दिया ।
कड़क तड़ित् ने दिई 'सलामी' आतपत्र वृक्ष ने किया ॥

[१०]

विहङ्गकुल ने निज कलरव से उसका स्वागत गान किया ।
श्वापद शान्त हुए मृगगण ने दक्षिण में आमान किया ॥
श्रेणीबद्ध फलित तरुओं ने उसको झुककर किया प्रणाम ।
पुष्पित लता और बिरवों ने कुसुम बिछाये राह तमाम ॥

[११]

खड़ा हिमालय निज उन्नत मस्तक पर तत्पद धारन को ।
हुई तरङ्गित सुरधुनि तव अभिषेक पुनीत करावन को ॥
शिक्षा देती मानो सब को जननी रूप प्रकृति सारी ।
"विषय विरक्त ब्रह्म चिन्तन रत नर के सब आज्ञाकारी ॥"

["सद्दर्शन" से ।]

पुरोहित गोपीनाथ जी एम ए

प्रचलित कहावतों पर कुण्डलियाँ

[१]

"अन्धा बाँटे जेवरी पीछे बाछा खाय"
पीछे बाछा खाय अन्ध को सूझत नाहीं।
ज्ञान कहाँ तें होय ज्योति हिय नैनन माहीं॥
जतन करत नरदेह मोह माया ते भूलो।
जानत काल न मूढ़ फिरत है फूलो फूलो॥
'रसिक' आपुनी शक्ति बिन जाचे काम जु धाय।
अन्धा बाँटे जेवरी पीछे बाछा खाय॥

[२]

"आग लगन्ते झोपड़ा जो निकसे सो लाभ"
जो निकसे सो लाभ जात नर ऊमर बीती।
काया रहे न बित्त वृथा क्यों थूक फ़ज़ीती॥
जो गिनती के श्वास ताहि बिरियाँ हरि गावो।
धन जोवन तन माँहि वृथा जिन काल बितावो॥
जाते जाते जो बचै 'रसिक' हाथ गहि गाभ।
आग लगन्ते झोपड़ा जो निकसे सो लाभ॥

[३]

"बीते ब्याह कुम्हार के भाँडा लेने जाय"
भाँडा लेने जाय ब्याह के बीते जोही।
निज हाथन उपहास करावत आपहु सोही॥

जब लौं इन्द्रिय शक्ति तभी लौं कर हरि हेता ।
साधहु चारो वर्ग काय मन बचन समेता ॥
आग लगे घर में 'रसिक' कूप खने जो धाय ।
बीते ब्याह कुम्हार के भाँडा लेने जाय ॥

[४]

"गुड़ जाने कै कोथरा कै बनियाँ की हाट"
कै बनियाँ की हाट जाहि बीती सो जानै ।
निज कर्मन के भोग करे वो ही पहिचाने ॥
लोग कहें इस हाथ दे, ले इस हाथ सँभार ।
मिलै न फल इस लोक में तो उस लोक मँझार ॥
'रसिक' करे जो ही लखे गति न और इस बाट ।
गुड़ जाने के कोथरा कै बनियाँ की हाट ॥

[५]

"सौगाहे सूआ पढ़े अन्त बिलाई खाय"
अन्त बिलाई खाय कीर दूजी गति नाहीं ।
राम अकारथ नाम भक्ति बिन हिरदै माहीं ॥
पढ़हु न वेद पुरान चौदहु विद्या सारी ।
लाभ कछू जिन जान अविद्या जो न बिसारी ॥
'रसिक' ढेर पकवान लखि भूख न कहूँ पटाय ।
सौगाहे सूआ पढ़े अन्त बिलाई खाय ॥

[६]

"नदी किनारे रूखरा जब कब होय बिनास"
जब कब होय विनास काल चढ़ि बाढ़ जो आवै ।
जरा जीर्ण नर देह ग्रास ते कौन छुड़ावै ?

मृत्यु लिए कर बान रहा तकि औसर अपना।
प्रान जाय तजि काय जीव जनु जग सुख सपना॥
'रसिक' चेत हरि नाम भज जब लौं आतुर श्वासं।
नदी किनारे रूखरा जब कब होय विनास॥

[७]

"ढाक चढ़त बारी गिरै करै राउ पर रोष"
करै राउ पर रोष दोष निज ताहि लगावै।
अपनी करनी भूलि परहिं अपराधि बनावै॥
दुख प्रतिफल निज पाप है सुख हु सुकृत परिणाम।
रीति यही जग दूसरे सिर पौंछत निज काम॥
सुख दुख अपने कर्म के 'रसिक' प्रभू निर्दोष।
ढाक चढ़त बारी गिरै करै राउ पर रोष॥

[८]

"सूने घर को पाहुनो ज्यों आवे त्यों जाय"
ज्यों आवै त्यौं जाय लाभ कछु बिना उठाये।
होकर हाय हताश निशा बासर बिसराये॥
पैसत मानुष खोरि जीव उन्नति अभिलाषी।
माया में लपटाय रहे पुनि अन्त निराशी॥
सुकृत करे नहिं जो 'रसिक' तन मानुष को पाय।
सूने घर को पाहुनो ज्यों आवै त्यों जाय॥

[९]

"जोगी था सो रम गया आसन रही विभूत"
आसन रही विभूत जीव तजि देह सिधारा।
लार(सँग) गये नहिं द्रव्य पिता माता सुत दारा॥

पाप पुण्य नर देह गहि करे जो सारा काम ।
सङ्ग जात पर लोक में छांड़ि सुयश अरु नाम ॥
'रसिक' रही मिट्टी जबै आन लिया यमदूत ।
जोगी था सो रम गया आसन रही विभूत ॥

[१०]

"कोऊ काहू को नहीं देखो ठोंक बजाय"
देखो ठोक बजाय जगत स्वारथ को साथी ।
मात पिता सुत नारि सुता वृष घोटक हाथी ॥
बाग बगीचा मित्र राज दरबार, रु भोई ।
जड़ चेतन निज लाभ विना लखि है नहिं कोई ॥
'रसिक' नाहिं संसार इक सङ्गी स्वार्थ बिहाय ।
कोऊ काहू को नहीं देखो ठोंक बजाय ॥

[११]

"जैसे कन्ता घर रहे तैसे गये बिदेश"
तैसे गये बिदेश कबहुँ सुधि भूलि न लीनी ।
जप तप किये न यज्ञ भोग में रुचि हू न दीनी ॥
एक एक कर सब गये दिवस रहा नहिं कोय ।
अब पछितावत है वृथा निज हाथन तें खोय ॥
'रसिक' लोक परलोक को साधन किया न लेश ।
जैसे कन्ता घर गये तैसे हि रहे बिदेश ॥

[१२]

"भुस ऊपर को लीपनो अरु बारू को भीत"
अरु बारू की भीत रहे थिर दिवस किते कहु ?
बिन श्रद्धा को दान पुन्य सुख हेतु न नेकहु ॥

कनक कामिनी माँहि मन तन पर भगुवाँ भेख ।
यह ठग विद्या जगत में गली गली में देख ॥
मन मैला तन ऊजला 'रसिक' राम सुख प्रीत ।
भुस ऊपर को लीपनो अरु बालू की भीत ॥

[१३]

"सदा न फूलै तोरई सदा न सावन होय"

सदा न सावन होय चराचर रूप बढ़ावन ।
रूप न रहे हमेश चहे सङ्ग जोबन जावन ॥
जोबन थिर नहिं सदा देह नहिं अजर अमर पुनि ।
सत्य एक भगवान ध्यान जेहि धरत योगि मुनि ॥
'रसिक' जागि उठि राम भज अवसर पर जनि सोय ।
सदा न फूलै तोरई सदा न सावन होय ॥

["समालोचक" से

———

श्रीयुत पण्डित राधाकृष्ण जी मिश्र ।

पञ्जाब का भूकम्प ।

[१]

शान्तिशील, सम्राट, सातवें एडवर्ड भूपाल ।
दयासिन्धु नरदेव वीर का है यह शासन काल ॥
कर सकता है कौन शत्रु फिर तुझ पर अत्याचार ?
कहो पञ्चनद-भूमि ! मात ! क्यों उठो काँप इस बार ?

[२]

उन्नतमस्तक, सुरगण-पूजित, पूत, हिमालय अङ्ग ।
शोभित जिसके वक्षःस्थल पर पञ्चपयोधर गङ्ग ॥
हुए विश्वभय-हरण वीरवर सुत जिसके विख्यात ।
वीर-मात ! वह वेद विदित तेरा क्यों कम्पित गात ?

[३]

महावीर जब नृपति सिकन्दर आया तेरे द्वार ।
जिसकी विजयशील सेना से था कम्पित संसार ॥
तब तनुपालित बिजय बाहिनी, लेकर अपने साथ ।
नृप पुरु ने, निष्कम्प, हृदय से, जाय मिलाया हाथ !

[४]

कालरूप महमूद ग़ज़नवी का जब भारी क्रोध ।
हुआ सकल भारत पर, तब भी तू ने तजा न बोध ॥

निशि दिन तीव्र कृपाण चली, वह निकला रक्त-प्रवाह ।
तदपि देवि ! तव कठिन हृदय में नेक न उपजा दाह ॥

[५]

प्रबल मुहम्मद ग़ोरी ने जब किया अतुल संग्राम ।
जिसमें आये पृथ्वीराज सम वीर पुत्र तव काम ॥
हुआ रक्त कर्दम मय जब हा ! दृषद्वती का तीर ।
एक बेर भी हुआ न कम्पित तब तव कठिन शरीर ॥

[६]

पुन्यपुञ्ज तेरे वपु पर कितने ही कई प्रकार ।
म्लेच्छराज आए गर्वित होकर निज कुपद प्रहार ॥
लुण्ठित देश, भग्न देवालय, हुए ध्वंस द्विजवंश ।
तब भी तेरा कम्पित होता देखा एक न अंश ॥

[७]

धर्मवीर गुरु तेगबहादुर सम अनेक असहाय ।
काटे गये सिक्ख, जननी ! जब निर्दोषी निरुपाय !
निरपराध जीवित बालक जब चिने गए निश्चिन्त ॥
अचला हुई न सचला तब तू, रही देखती, हन्त !

[८]

हे भारत की द्वारभूमि ! अगणित ही अत्याचार ।
सहन कर चुकी, श्रवण कर चुकी, निज सुत हाहाकार ॥
किन्तु आज तक हुई न माता ! ऐसी कभी अधीर ।
हे मुनिजन जननी ! कहदे क्यों तेरे नयन सनीर ?

[९]

विश्वविदित ऋषिकुल पूजित सुरसेवित दिव्य अनूप।
सुजला सुफला "शस्य श्यामला" मा! तेरा वह रूप॥
हाय! नष्ट होगया अङ्ग सब निर्बल रोग नवीन।
दीना, मलिना, भग्न-हृदय, कम्पित-तनु प्रभा विहीन॥

[१०]

आदि-सर्ग-कारिणी-देवि! क्या जराजीर्ण तव अङ्ग
हुआ? इस लिये कम्प, बिगड़ सब गया पुरातन रङ्ग॥
कैसा ही बलवान पुरुष हो, कैसा ही दृढ़-काय।
कर सकम्प कर देता है तन को, अन्त बुढ़ापा हाय!

[११]

क्या अब तव सन्तति का इतना कलमष बढ़ा अपार
धरणीधर भगवान् शेष नहिं सह सकते हैं भार?
धन, जन, बल, भूतल आदिक नहिं रखते हैं अवशेष।
क्षमा न करते वर्द्धमान अघ विश्वम्भर हर शेष॥

[१२]

त्यागशील, बल-गौरव-युत, गत सन्तति को कर याद।
हे गुरु गौरवधरा! हुआ क्या यह तेरे उन्माद?
सब कुछ जाती भूल किन्तु नहिं भूलै किसी प्रकार।
दुःख काल में याद करै मा, मृत-सुत को बहु-बार॥

[१३]

प्रतिदिन प्रसरणशील अचानक चरित मरण का योग।
प्लेग वेग को देख हुआ क्या अब तेरे यह रोग?

समर भूमि में मरे न उतने किसी देश के बीच।
जितने यहाँ रोग के कारण सोए आंखें मीच॥

[१४]

क्षुधित दीन दुर्भिक्ष दलित सुतगण को अपने पास।
देख सकी नहिं दयावती! क्या यों मन उपजी त्रास?
क्षुधा क्लिष्ट निज रुग्ण कलेवर रख लेती मा! आप।
किन्तु टूक उर के कर देती देख पुत्र सन्ताप॥

[१५]

धर्म्मधरा! क्या धेनुरक्त का इतना हुआ प्रताप?
सहनशील! नहिं सहन कर सकी जिसका अब आघात?
उपकारक जीवों का होता रक्तपात जिस काल।
बुद्धिमान जन कहें पाप से तब होता भूचाल॥

[१६]

गुरुजन जिनके शीस दे गये हिन्दु धर्म के काज।
तद्विरुद्ध सुन उनकी बातें क्या अब आई लाज?
मान्य जनों की बात जहाँ जन करती बिना विचार।
वृद्ध लोग यों कहें सभी तब पड़े गज़ब की मार॥

[१७]

हरि-मन्दिर में, हरि-प्रतिमा का होता है अवरोध।
धर्मभीरु! इस लिये हुआ क्या तेरे तन में क्रोध?
पूजा होती नहीं पूज्य की, जहाँ पूज्य हों नीच।
कहें वेद उत्पात वहाँ हो बने रक्तमय कीच॥

[१८]

बता हेतु क्या है प्रकम्प का ? जननी ! स्नेहाधार !
निज हाथों से किया किस लिये सुतगण का संहार ?
पुत्रादिनी सुनो थी साँपिनि और न दूजी हाय !
समय फेर से माता भी क्या निज सुत लेती खाय ?

[१९]

महोदरी ! तव फटे पेट में कितने ही अब ग्राम।
समा गए जन चिन्ह सहित, मिटगया जगत से नाम ॥
कोट काँगड़ा मिला धूल में, अगणित जन गृहहीन।
भीख माँगते फिरैं, न मिलती, इतना भाग्य मलीन !

[२०]

जहाँ धनिक निज देश-दशा की भूल चुके सब बात।
जहाँ रोगगण डेरा डाले रहते हैं दिन रात ॥
उसी देश पर हाय ! कम्प ने ऐसा किया प्रहार।
कहा किसी ने सच कि "मरे को मारै शाहमदार" ॥

[२१]

जिनके लिये भीख नृप माँगै, हुए ख़जाने राख।
हाय ! अभागों के हित तौ भी मिलै न पन्द्रह लाख ॥
जिन पर नीरद नीर न वर्षै जिन्हें न कुछ आमोद।
धरणी ! उन्हें उचित थी मिलनी तेरी प्यारी गोद !

["समालोचक" से]

नोट—इस कविता के दो पद्य उद्धृत नहीं किये गये ।

श्री युत बाबू मैथिली शरण गुप्त ।

सिन्धु-शासन ।

[१]

भुवन भय मिटाने, "धर्म्मसंरक्षणार्थ ;"
दशशिर-शिर देने काल को भक्षणार्थ ।
अगणित कपि-सेना, साथ ले शक्तिकेन्द्र,
जिस समय पधारे, शीघ्र श्रीराघवेन्द्र ॥

[२]

उस समय उन्होंने, धीर गम्भीर भारी ;
विविधि जलचरों से पूर्ण आश्चर्यकारी ।
दशमुख-भय मानों, चित्त में नित्य मान ;
तदखिल-नगरी का, मार्ग रोके प्रधान ॥

[३]

पृथुल गगन कासा, रूप विस्तार-धारी ;
जलनिधि जब देखा, बीच में विघ्न-कारी ।
प्रथम तब उन्होंने, नीति-रक्षार्थ काज ;
सुविनय उससे की, सत्पथि-प्राप्ति व्याज ॥

[४]

बिगत जब हुई यों रात्रियाँ तीन सर्व
पर तदपि न छोड़ा, सिन्धु ने रञ्च गर्व ।

उस पर तब जो में वे परब्रह्म सत्य ;
अति कुपित भये, ज्यों हुए थे अगस्त्य ॥

[५]

उस समय नितान्त क्रोध से ज्वाल पूर्ण ;
दृग युग उनके यों, हो गये रक्त तूर्ण ।
असित सरसिजों में, अद्भुताश्चर्य सद्म :
स्फुट विकसित मानों, हो गये रक्तपद्म ॥

[६]

स्फुरित भुजवरों की, व्यग्रता से महान ;
कुटिल भृकुटियों की उग्रता से प्रधान ।
नयन शत दलों की, रक्तता से विशेष :
उस समय हुए वे, क्रोध के स्पष्ट वेष ॥

[७]

फिर कुपित खड़े थे, जो पिछाड़ी महान :
तरुण अरुण पीछे, जगदुज्वालोपमान ।
उन अनुजवरों से, सच्चिदानन्द राम :
वरवचन लगे यों, बोलने नीतिधाम ॥

[८]

जब कि दिन हुए हैं, व्यर्थ ही तीन नष्ट ;
पर प्रकट हुआ है सिन्धु तौ भी न धृष्ट ।
प्रकटित इससे तो, है यही स्पष्ट बात ;
कि वह सुपथ देना, चाहता है न भ्रात !

[९]

अधम खल जड़ों में, साधुओं के समान ;
विफल सकल जाता, श्रेष्ठ बर्ताव-दान।
जब तक उनका तो, ताड़ना दी न जाती :
तब तक उनकी धी, है ठिकाने न आती॥

[१०]

कह वचन उन्होंने, सत्य यों युक्ति-युक्त ;
फिर चपल चढ़ाया, चाप पे बाण शुक्त।
सजल जलद जैसे, शक्र-धन्वा समेत ;
उस समय हुए वे, तेज-शोभा-निकेत॥

[११]

ज्वलित तरु-तमाल श्रेष्ठ ज्यों कान्तिमान ;
जब सगुण लगे वे, खींचने तीक्ष्ण-बाण।
उस समय बड़ा हो, अद्भुत त्रास-भाण्ड ;
प्रकट प्रलय का सा, होगया भीम-काण्ड॥

[१२]

क्षिति सहित समस्त, स्वर्ग-पाताल लोक ;
चलचल दल ज्यों हो, या उठै त्रास शोक।
चर अचर सभी को, त्यों लगा क्लेश होने ;
प्रकट सब लगे वे ताप से धैर्य्य खोने॥

[१३]

"अहह ! प्रलयकारी दुःखदायी नितान्त ;
प्रभुवर यह हा ! हा ! कीजिये कोप शान्त।"

सुर नर मुनि सारे, जान कल्पान्त-काल ;
उस समय लगे यों बोलने हो बिहाल ॥

[१४]

क्षुभित अति इसीसे, हो उठा सिन्धु भारी ;
बिकल सकल प्राणी, हो उठे वारि-चारी ।
सचकित अति ही ये, देख उत्पात भारी ;
उस समय लगी यों, सोचने सृष्टि सारी ॥

[१५]

"प्रबल-अनिल बल्ली, है हिलाती यथैव ;
विचलित अचला क्यों, हो रही है तथैव ।
प्रकट यह हुआ क्या, आज भूकम्प भारी ?
फिर यह तम कैसा, छा गया त्रास-कारी ?

[१६]

तप-समय बिना ही, दुःख दायी अखण्ड :
चपल चल रही है, क्यों समीर प्रचण्ड ।
गुरतर तरु क्यों ये हो रहे खण्ड खण्ड :
अहह ! किस लिये हैं, पारहे तीक्ष्ण दण्ड ॥

[१७]

दिनकर सहसा क्यों, होगये तेज-हीन ;
फिर हिमकर भी तो, लुप्त से हैं मलीन ।
प्रकट यह हुआ है, क्या तमिस्रा विकाश :
फिर उड़गन भी तो, हैं न देते प्रकाश ॥

[१८]

द्युति रहित दिशाएँ, हो गयीं क्यों अशेष ;
यह तम छिन ही में, छा गया क्यों अशेष ।

गति रवि शशि की क्यों, हो गयी वक्र हन्त !
भय दुख सब प्राणी, पा रहे क्यों अनन्त ?

[१९]

अचल चल अहो ! क्यों, हो रहे ये समक्ष ?
अब फिर इनको क्या, हो गये प्राप्त पक्ष ?
निपतित इनके क्यों, हो रहे तुङ्ग शृङ्ग ?
प्रकट यह हुआ क्यों बज्रपात-प्रसङ्ग ?

[२०]

घन असमय में हो, दौड़ते ये कहो क्यों ?
चमक चमक जातीं, चञ्चलाएँ अहो ! क्यों ?
ज्वलित अनिल सी क्यों, दृष्टि सर्वत्र आती ?
व्यथित-चकित सारी सृष्टि है क्यों दिखाती ?

[२१]

घन-सम-रव-कारी, लोल कल्लोल युक्त ;
उदधि बढ़ रहा क्यों, धारणा से विमुक्त ?
प्रलय-समय हो क्या, प्राप्त है आज अग्र ;
यह जल उसका जो, होरहा उग्र-व्यग्र ?

[२२]

तरल तल तरङ्गें भूधरों के समान ;
इस जलनिधि की क्यों, हो रही हैं महान ?
सब जल इसका क्यों, होगया आज लाल ?
यह रव इसमें से, आरहा क्यों कराल ?

[२३]

प्रबल-लपट वाली, वन्हि अत्यन्त भीम ;
इस पर जलती सी, क्यों दिखाती असीम ?
भुवन विदित जो है, वाड़वाग्नि प्रचण्ड ;
प्रकट यह वही क्या होगयी है "अखण्ड" ?

[२४]

बहुविधि घटनाएँ, देख ऐसी विचित्र :
इधर बुध लगे यों, सोचने सच्चरित्र।
उधर जलधि का भी होगया दर्प-चूर्ण ;
प्रभु-शरण अतः सो आगया त्रास-पूर्ण ॥

[२५]

सविनय कर जोड़े, दीन होके अपार :
उदधि उदधि में से, यों हुआ व्यक्त-हार।
उदय-अचल पै ज्यों, माघ में प्रात-काल
दिनकर छवि पाते छोड़ते अंशु-जाल ॥

[२६]

प्रथम विनय भी जो मानता था न लेश :
शरण अब वही हा! आगया है जलेश।
अहह! भय विना क्या प्रीति होती कहीं है ;
जय-श्रिय मिलती ज्यों नम्रता से नहीं है ॥

["श्री राघवेन्द्र" से।]

॥ इति ॥

Printed by Pt. Kalika Prasad Dikshit at the National Press, Allahabad.